वर्ष 6 : अंक 4 सेवाग्राम विकास संस्थान, नई दिल्ली अक्तूबर-नवंबर, 1993

सबला

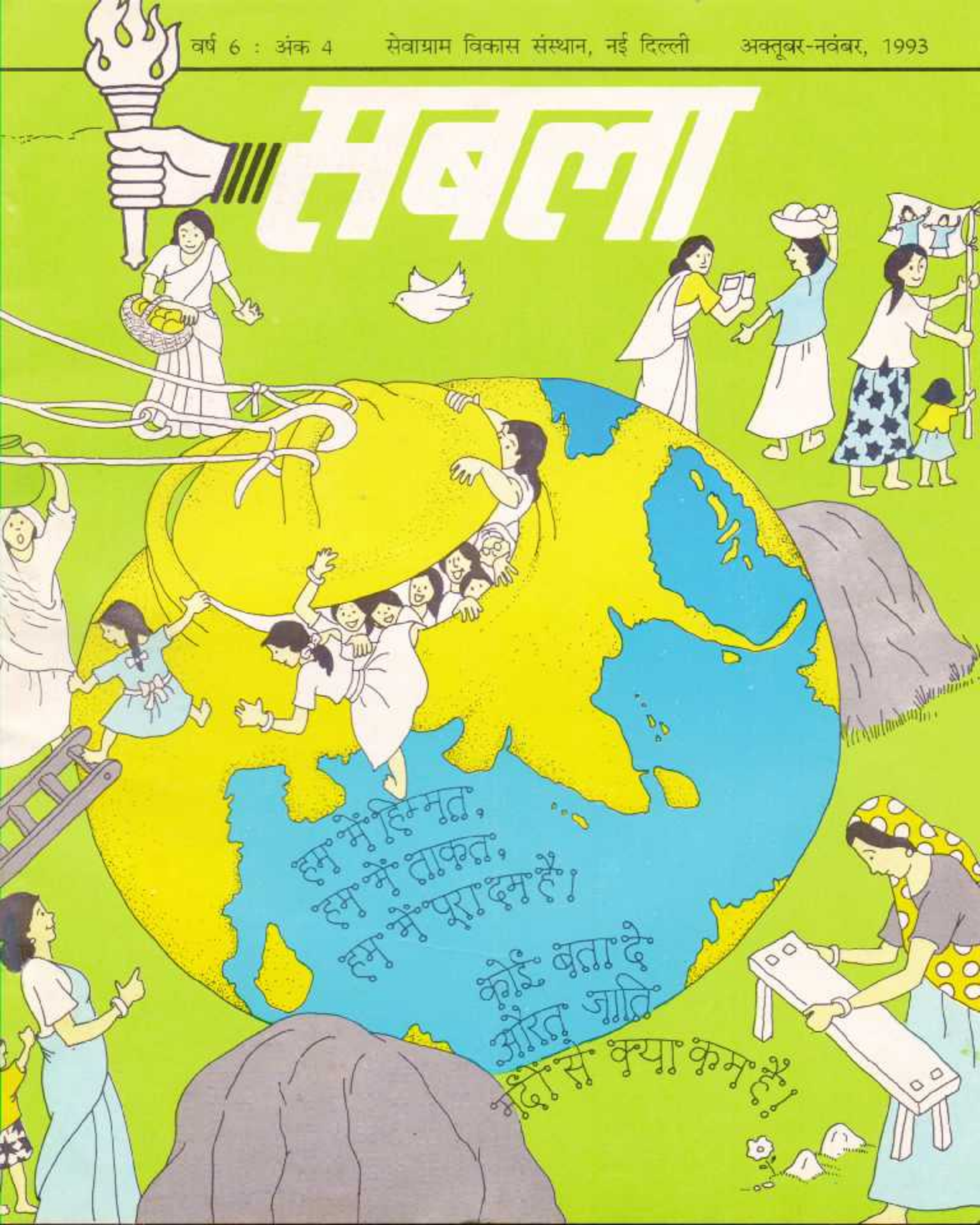

इस अंक में

हमारी बात	1
अपनी मर्जी की दुनिया बनाएंगे —कमला भसीन	3
बलात्कार: सरकार, कानून, समाज का रवैया —वीणा शिवपुरी	7
अनदेखी मेहनत का हवन कुंड —'समता' कला जत्था	10
औरतों का अपना बैंक —जुही जैन	11
औरतों की बदलती तस्वीर —सुहास कुमार	13
औरत और पानी (कविता) —आरती श्रीवास्तव	17
राधा और गुड्डो (चित्र कथा)	18-19
बेटी ने संस्कार किया	20
घरेलू हिंसा: सिर्फ निम्न वर्ग में नहीं —वीणा शिवपुरी	21
अपनी दुकान: एक सफल प्रयोग —जुही	23
सौदामिनी ने नया जीवन पाया —गीता साहनी	25
क्यों? (कविता) —तारा अहलूवालिया	26
जीनत, हमारी बहन	27
कुलदीपक ने आग लगाई	29
महिला पंच और पंचायतीराज —सुहास कुमार	31
कामकाजी महिलाओं के लिए कानून	33
सरकारी डाक्टर ने डंगरदाई की मदद ली	36

सहयोग मंडल

कमला भसीन

मणिमाला

ज्ञानेंद्र प्रसाद जैन

संपादिका

शारदा जैन

उप-संपादिका

वीणा शिवपुरी

जुही

चित्रांकन

बिंदिया थापर

वितरण

प्रतिभा गुप्ता

ग्रामीण बहनों की द्विमासिक पत्रिका—शिक्षा विभाग, मानव संसाधन मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा अनुदानप्रदत; डाक्टर शारदा जैन (सेवा ग्राम विकास संस्थान, 1 दरियागंज, नई दिल्ली-110 002) द्वारा संपादित व प्रकाशित तथा इन्द्रप्रस्थ प्रेस (सी. बी. टी.), नेहरू हाउस, 4 बहादुरशाह जफर मार्ग, नई दिल्ली-110 002 में मुद्रित।

आपसे एक अनुरोध

'सबला' हमारी-आपकी, हम सबकी है। यह तो अलग-अलग क्षेत्रों की बहनों को आपस में जोड़ने, मिलाने और दोस्ती करवाने का साधन है। इसके ज़रिए हमें आपबीती और जगबीती का पता चलता है। सबसे बड़ी बात तो यह कि 'एक' की हिम्मत को देख कर 'दस' को प्रेरणा मिलती है। आंध्रप्रदेश में शराब के ख़िलाफ़ बहनों के आंदोलन ने देश के और इलाकों की बहनों को भी प्रोत्साहित किया। कहां, किस जगह, किस समस्या से निपटने के लिए बहनें क्या तरीक़े अपना रहीं हैं, इसे आपस में बांटना बहुत ज़रूरी है।

हम आपसे अनुरोध करते हैं कि आप हमारे आंख, कान बनें। 'सबला' कितने दूर दराज के इलाकों तक जाती है और पढ़ी जाती है, इसका हमें अंदाज है। आप अपने क्षेत्र में औरतों के मुद्दों पर हो रहे काम की जानकारी दें। यदि आप सोचती हैं कि आपके आसपास किसी एक औरत ने या कुछ औरतों ने संगठित होकर ताक़त पाने की दिशा में कदम उठाया है तो हमें बताएं।

यह सच है कि हर एक के पास अच्छा लिख पाने की कला नहीं होती। कोई बात नहीं। अपने ढंग से अनघढ़ ही सही, जैसा चाहें लिखें। हमारी साथिनें यहां उसे संवार देंगी। हर सामग्री छापने का वादा तो नहीं करते, लेकिन इतना ज़रूर जानते हैं कि आप सबके योगदान से 'सबला' और ताक़तवर बनेगी। किस तरह के लेख, कहानियां व कविताएं आपको अच्छी लगती हैं, आपके काम में सहायता देती हैं यह भी बताएं। आपके इलाके में औरतों से जुड़े कौन से मुद्दे अहम हैं और उनके बारे में आप कैसी सूचनाएं व जानकारी चाहती हैं यह भी लिखें।

अपनी बात तो हमने आप तक पहुंचा दी। अब आपकी बात कब हम तक पहुंचे इसी का इंतजार है। तभी तो हमारा आपका रिश्ता मज़बूत होगा। तभी तो 'सबला' और खिलेगी, महकेगी, चहकेगी।

हमारा पता—

संपादिका 'सबला'
सेवाग्राम विकास संस्थान
1, दरियागंज, नई दिल्ली-2

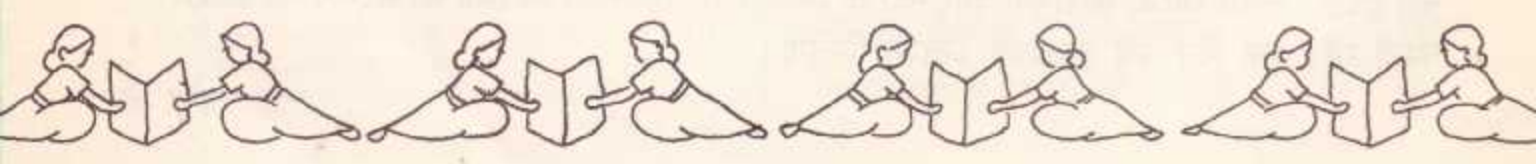

कमला भसीन

इन दिनों उत्तर भारत के पांच राज्यों में चुनावों की सरगर्मियां रही हैं। चारों तरफ पोस्टर, पर्चे, झंडे, झंडियां, दीवारों पर अलग-अलग उम्मीदवारों के नाम और निशान। लाउड स्पीकरों पर न समझ में आने वाले ऐलान। सजी हुई जीपें, कारें, दौड़ते हुए, हाथ जोड़ते हुए नेता, नारे लगाते हुए उनके समर्थक, चमचे या किराये के पिट्ठू। दिल्ली, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, हिमाचल प्रदेश, राजस्थान में, हर जगह यही माहौल रहा है। पैसा पानी की तरह बहाया गया। हर बार की तरह हर उम्मीदवार ने दुनिया भर के वादे किए।

इस पूरे राजनैतिक माहौल में हमेशा की ही तरह औरतों की भागीदारी बहुत कम रही। इन पांचों राज्यों के चुनावों में पांच प्रतिशत से भी कम औरतें चुनाव लड़ रही हैं। किसी भी पार्टी ने पांच-छः प्रतिशत से ज्यादा औरतों को टिकट नहीं दिए। जबकि हर पार्टी हर बार कहती है कि वो कम-से-कम तीस प्रतिशत औरतों को टिकट देगी।

संसद और राज्य विधान सभाओं में पिछले चालीस सालों में औरतों की संख्या घटी है, बढ़ी नहीं है। इसी से यह साबित हो जाता है कि राजनैतिक पार्टियां कहती कुछ और करती कुछ हैं। सभी पार्टियां दोषी हैं राजनीति में औरतों की भागीदारी न बढ़ाने की। आज जब यह क़ानून बन रहा है कि पंचायतों में 30 प्रतिशत औरतों का चुनाव ज़रूरी होगा, विधान सभाओं में तीन चार प्रतिशत से अधिक औरतें नहीं होंगी। यह हालत बहुत गंभीर है।

इस पर सिर्फ़ राजनैतिक पार्टियों को ही नहीं हर भारतीय नागरिक को सोचना है। खासतौर से हर औरत को सोचना होगा।

पुरुष नेता की छाया

अधिकतर राजनैतिक औरतें किसी मर्द नेता की पत्नी, बेटी, बहन हैं। जो इक्की-दुक्की औरतें चुनाव लड़ती भी हैं उनमें से ज्यादातर किसी मर्द नेता की रिश्तेदार होती हैं। पति चल बसे तो पत्नी राजनीति में आ गई—मानो राजनैतिक सीट एक परिवार की बपौती है। पिता नहीं रहे और कोई बेटा नहीं है या बेटा निखट्टू है या राजनीति से दूर रहना चाहता है तो बेटी राजनीति में आ जाएगी। यहां राजनेता की क़ाबलियत उनके परिवार से आंकी जाती है। उनके गुणों, अनुभव, राजनैतिक कार्यों से नहीं। ऐसी 'रिश्तेदार' महिला उम्मीदवारों को जनता की सच्ची प्रतिनिधि या एक महिला नेता मानना भी मुशकिल होगा। वो तो अपने पुरुष (पिता, पति) की छाया मात्र हैं। इनमें से कुछ औरतें कुछ बरसों में अच्छी, सफल नेता व राजनैतिक कार्यकर्ता बन जाए यह अलग बात है। कुछ बन भी जाती हैं पर ज्यादातर पारंपरिक औरतों का ही किरदार अदा करती हैं।

गंदी राजनीति

इस बात पर ग़ौर करना ज़रूरी है कि राजनीति में क्यों ज्यादा औरतें हिस्सा नहीं लेतीं। इसके पीछे कई कारण हैं, लेकिन खास कारण है वह विचारधारा कि औरतों का उचित स्थान आज भी घर के अंदर है और मर्दों का स्थान है बाहर। यह "अंदर" और "बाहर" या "निजी" और "सार्वजनिक" का भेद औरतों और पुरुषों का किरदार निर्धारित करता है। अच्छी, नेक, इज्जतदार औरतें सार्वजनिक क्षेत्र में नहीं जातीं, उन्हें घर ही शोभा देता है, यह कहा और माना जाता है। इसी तरह की दलीलें दे कर औरतों को उन सब संस्थाओं, सभाओं से दूर रखा जाता रहा है जहां पर समाज के बारे में सब फ़ैसले लिए जाते हैं।

इसी "निजी" और "सार्वजनिक" (पर्सनल और पब्लिक) के भेद की वजह से सैंकड़ो बरसों तक औरतों को वोट देने का अधिकार ही नहीं था। औरतों को सालों साल संघर्ष करने पड़े थे मतदान का हक़ पाने के लिए। औरतें, दास, ग़रीब या संपत्तिहीन व पागल सब एक श्रेणी में आते थे। इन सब को मतदान का अधिकार नहीं था। इन सब को सामाजिक व राजनैतिक अधिकारों व ज़िम्मेदारियों के क़ाबिल नहीं माना जाता था।

'मर्दाना' माहौल

औरतों के राजनीति से दूर रहने का एक और बड़ा कारण है राजनीति का 'मर्दाना' माहौल। "मर्दाने" का मतलब यहां सिर्फ़ यही नहीं है कि वहां सिर्फ़ मर्द होते हैं। इसका काफ़ी व्यापक मतलब है—राजनीति में मर्दानी ज़बान बोली जाती है। गाली-गलौज सब जायज़ ही नहीं, ज़रूरी है। मर्दाने का मतलब है हिंसात्मक माहौल—जहां हर पार्टी गुंडे पालती हैं, भीड़ इकट्ठा करने और भीड़ हटाने के लिए हर हथकंडा अपनाती है। मर्दों की भीड़ में अकेली या दो चार औरतों का चलना तक दूभर हो जाता है, इज्जत से रहने की बात छोड़िए। सड़कों पर ही नहीं, संसद और विधान सभाओं में अक्सर मार-पीट होती है, एक दूसरे पर जूते फेंके जाते हैं, गंदी गालियां दी जाती हैं।

एक और बड़ा कारण है राजनीति में पैसे का बोलबाला। बहुत कम औरतें ऐसी हैं जिनके पास अपना पैसा है और इतना है कि वो उसे पानी की तरह बहा सकें।

राजनीति में आने वाली "सार्वजनिक" औरतों के चरित्र पर सभी लोग कीचड़ उछालने को बैठे रहते हैं। हर औरत की शक्ल, कपड़ों, उसके उठने-बैठने, मिलने-जुलने पर फब्तियां कसी जाती हैं। बड़ी-बड़ी अखबारें भी औरतों के साथ ऐसा सलूक करती हैं।

इन्हीं सब कारणों से औरतें राजनीति में आने से घबराती हैं। इसी वजह से मतदाताओं की हैसियत में भी औरतें सक्रिय नहीं होतीं। चुनावों में होने वाली मीटिंगों में मर्द ही भरे रहते हैं। गांवों में फिर भी औरतें आ जाती हैं मीटिंगों में, शहरों में बहुत कम आती हैं। जब बोलने वाले मर्द हैं, सुनने वाले मर्द हैं तो फिर औरतों की खास ज़रूरतों और मांगों की बात ही नहीं होती। औरतों के मुद्दे चुनावी मुद्दे नहीं बन पाते। यानि आधी प्रजा का कोई ज़िक्र नहीं। यानि आधा प्रजातंत्र, और आधे प्रजातंत्र का मतलब है बेकार प्रजातंत्र।

बदलाव जरूरी

इस सूरते हाल को बदलना ज़रूरी है। प्रजातंत्र में जनता की शक्ति सबसे बड़ी शक्ति है। जनता तय करती है उनके प्रतिनिधि कौन हों, कौन उनके लिए क़ानून बनाएं। औरतों को राजनीति से दूर रह कर नुकसान ही है। इस दूरी को मिटाना ज़रूरी है।

अगर राजनीति गंदी है तो उस से दामन बचाने की जगह उस में जाकर उसे साफ़ करना होगा। आखिर औरतों से बढ़कर सफ़ाई करने वाले और कहां मिलेंगे। औरतों को एक बार फिर से राजनैतिक आंदोलन छेड़ना होगा। इसके बिना अब कोई चारा नहीं है। ऐसी सरकारें लानी होंगी जो औरतों की ज़रूरतें समझें और उन्हें पूरा करें। जो समाज में ऐसा माहौल बनाएं जहां औरतें सुरक्षित हों और अपने आप को सुरक्षित महसूस

करें। जहां औरतों की इज्ज़त हो, जहां औरतों को काम मिले, काम के वाज़िब और बराबर दाम मिलें। जहां उन्हें आर्थिक अधिकार हों, संपत्ति का अधिकार हो, ज़मीन के पट्टे उनके नाम हों। जहां सेहत का पूरा इंतजाम हो, पीने को साफ़ पानी हो, राशन पूरा व समय पर मिलता हो। ये सब तभी हो सकता है जब प्रजा जागरूक होगी, अपनी ज़िम्मेदारी निभाएगी।

भाग्य भरोसे बैठने से काम नहीं चलता। अच्छा भाग्य बनाने के लिए मेहनत करनी पड़ेगी और यह कहना पड़ेगा—

काम ऊपर वाले का कुछ हमने हल्का है किया
फ़ैसले करने का हक़ अब अपने हाथों में लिया।

एक अहम् सवाल ?

दोहरे मापदंड

पांच साल के सोनू और उसकी ढाई साल की बहन रट लगाए रहते थे कि पापा कब आएंगे? एक दिन नीला ने अचानक कह दिया, "अब तो तुम्हारे पापा बस घोड़े पर बैठकर आएंगे।"

घर में बड़ी-बूढ़ियों, ननदों, जिठानियों में कोहराम मच गया। "कितनी बेहया है नीला, दूसरी शादी करना चाहती है। नौकरी करने जाती है या आंखें लड़ाने।" पड़ोस में भी चर्चा हुई—"नीला दूसरी शादी करने जा रही है।"

नीला के पति की मृत्यु एक बस दुर्घटना में हो गई थी। 26 साल की उम्र में विधवा हो गई। पति के दफ्तर में एक छोटी-सी नौकरी मिल गई थी। उससे अपना व दोनों बच्चों का गुज़ारा चल रहा था।

× × ×

पड़ोस में अधेड़ शर्मा जी रहते हैं। पत्नी को गुज़रे तीन महीने भी न हुए कि दूसरा ब्याह कर लिया। दो पुत्र बी.एस.सी. तथा पुत्री इंटर में पढ़ रही है। तब इन्हीं सब लोगों ने खुशी से बधाई दी थी और कहा था, "चलो, शर्मा जी का घर बस गया।"। □

मनोरमा भटनागर

हम बंधे हैं
इसलिए हम एक हैं
यही हमारी ताकत हैं
जिला इकाई (महिला विकास समिति) जोधपुर प्रौढ़ शिक्षण समिति, जोधपुर - श्रीमति चित्रा राठौड व रघुवीर सिंह राठौड

बलात्कार

सरकार, क़ानून और समाज का रवैया

वीणा शिवपुरी

वह चीख़ी
उन्होंने कहा
शायद एक बेआवाज़ चीख थी
क्योंकि किसी ने नहीं सुनी

या शायद
हर किसी ने सुनी
पर अनसुनी कर दी।

अपराध का नंगा नाच

हर रोज़, हर घंटे औरतों व बच्चियों के साथ बलात्कार हो रहा है। उन्हें मारापीटा और नोचा-खसोटा जा रहा है। पिछले एक साल के अखबार उठा कर ही देख लें तो सैंकड़ो मामले सामने आ जाते हैं। बड़े शहर की बस में बलात्कार, गांव के खेत में बलात्कार, क़स्बे की अदालत के अहाते में औरत को नंगा करना, कहां तक गिनाया जाए।

इतना ही नहीं, आठ दस साल की मुकदमेबाज़ी के बाद जब बलात्कारी छूट जाए या उससे सहानुभूति जता कर सर्वोच्च अदालत उसकी सज़ा कम कर दे तो सरकार, कानून और समाज का औरत के प्रति रवैया साफ़ हो जाता है। प्रगतिशीलता का दम भरने वाली सभी एजेंसियों के चेहरे से नक़ाब उतर जाती है और सामने आता है दोहरे मापदंड रखने, औरत को पैर की जूती समझने वाला पितृसत्तात्मक चेहरा।

कुछ मामले

— बाईस सितंबर '92 को राजस्थान की साथिन भंवरी बाई के बलात्कार को एक साल पूरा हो गया। अब तक बलात्कारियों को हथकड़ी भी नहीं पड़ी है। वे तो खुलेआम घूम रहे हैं और भंवरी बाई से गांववालों ने नाता तोड़ लिया है।

— मई '93 में सहारनपुर के नज़दीक एक गांव के राजू ने महिला समाख्या कार्यक्रम की एक सखी सत्तो के साथ बलात्कार किया। महिला समाख्या कार्यक्रम के दबाव के तहत राजू को गिरफ्तार तो किया गया लेकिन ज़मानत पर छोड़ दिया।

— दस फरवरी को कर्नाटक में एक आंगनवाड़ी कार्यकर्त्ता के साथ सामूहिक बलात्कार करके उसकी हत्या कर दी गई।

— चार अप्रैल को दो पुलिस अफ़सरों और एक पटेल ने मिल कर नर्मदा बचाओ आंदोलन की कार्यकर्ता बूदी बेन के साथ सामूहिक बलात्कार किया।

— सहारनपुर अदालत के अहाते में सैंकड़ो लोगों की नज़र के सामने ऊषा के कपड़े नोचकर उसे नंगा कर के घुमाया गया।

— फरवरी में दिल्ली से तेरह साल की एक बच्ची का अपहरण करके पैंतालिस दिन तक चार युवकों ने उसे अपने कब्ज़े में रखा। डेढ़ महीने तक लगातार उसके साथ बलात्कार किया जाता रहा। अपराधी अब तक खुले घूम रहे हैं।

गहरा अंधेरा

ये कुछ मामले देख, पढ़, सुन कर अंदाजा लगाया जा सकता है कि पूरे देश में औरतों के साथ होने वाले यौन अत्याचारों के प्रति सरकार, पुलिस, कानून और आम समाज का रवैया कितना घिसा पिटा और पुरातनपंथी है। पुलिस के आंकड़े बता रहे हैं कि हर साल इन अपराधों की रिपोर्टों की संख्या बढ़ती जा रही है। लेकिन ऐसे अपराधों में सज़ा अब भी सिर्फ़ पांच प्रतिशत मामलों में होती है।

पिछले कुछ दशकों में औरतों में चेतना का स्तर ऊपर उठा है। देश के सैंकड़ो महिला समूह अपने अपने इलाकों में ऐसे मामले उठाते हैं। पुलिस पर दबाव डालते हैं। आंदोलन करते हैं। फिर भी पितृसत्तात्मक एजेंसियों के रवैये में बदलाव आता दिखलाई नहीं पड़ रहा है।

भंवरी बाई का मामला एक तरह से मील का पत्थर माना जा सकता है। इस अपराध के घटने के एक महीने के भीतर पूरे भारत में महिला समूहों ने इस के ख़िलाफ विरोध प्रदर्शन किया। सरकार पर दबाव डाला। जयपुर में बहुत बड़ी रैली की। राष्ट्रीय महिला आयोग ने भी इस मामले को उठाया और अपनी रिपोर्ट सरकार को दी। अख़बारों ने भी इस मामले पर पूरी रोशनी डाली।

देश के अधिकांश महिला समूहों, सक्रिय कार्यकर्ताओं ने अपनी पूरी ताक़त लगा कर अपराधियों को पकड़वाने को कोशिश की। फिर भी अगर सफलता नहीं मिली तो अन्य हज़ारों औरतों-लड़कियों को न्याय पाने की क्या आशा हो सकती है, जिन्हें ऐसा सहयोग नहीं मिल पाता।

पुरुषवादी नज़रिया

1978 में इक्कीस साल की एक लड़की के साथ हुए बलात्कार के मामले में पंद्रह साल बाद सर्वोच्च न्यायालय ने बलात्कारियों की जवानी पर रहम खाते हुए उन्हें सिर्फ़ तीन साल की सज़ा दी। इस फैसले ने न सिर्फ़ औरतों बल्कि सभी न्यायप्रिय लोगों में सनसनी फैला दी। अगर बलात्कारी कम उम्र के थे तो वह लड़की क्या थी!

अगर पिछले पंद्रह सालों में बलात्कारियों ने मानसिक दुख उठाया है तो उस लड़की के अपमान, शर्मिंदगी और पीड़ा की कोई सीमा थी?

यह बात साफ़ है कि न्याय पाने के सफ़र में औरत का जितनी एजेंसियों से पाला पड़ता है चाहे वह एक एफ.आई.आर. लिखने वाला थानेदार हो या सर्वोच्च न्यायालय की ऊंची कुर्सी पर बैठने वाला जज, सबका नज़रिया और रवैया पितृसत्तात्मक है। जिसके तहत औरत की हैसियत और उसका दर्जा गिरा हुआ है। उसके साथ होने वाले अपराधों की गंभीरता कम है। ख़ासतौर पर यौन अपराधों में औरत को ही दोषी माना जाता है। औरत ने ही पुरुष को उकसाया, भड़काया होगा।

जब तक सरकार, कानून और आम समाज का रवैया औरत को इंसान मान कर उसके प्रति संवेदनशील नहीं होता, उसे न्याय नहीं मिल सकेगा। यह कहा नहीं जा सकता कि यदि ज़्यादा से ज़्यादा औरतें इन एजेंसियों का हिस्सा बनें तो कुछ बदलाव आएगा या नहीं, लेकिन ऐसी कोशिश ज़रूर की जानी चाहिए। समाज के हर स्तर पर औरतों के साथ होने वाले अपराधों के प्रति चेतना और संवेदना फैलाने के प्रयत्न होने चाहिए।

□

हर किसी अन्याय के खिलाफ़ ज़ोरदार विरोध किया जाना चाहिए। तभी शायद यह बहरी सरकार, बहरा कानून और बहरा समाज हमारी चीख़ें सुन सकेगा।

किसकी आवाज़

कई वर्ष पुराना यह किस्सा है
बाहर कदम रख, औरत ने लगाया नारा
जिससे सोचने लगा संसार सारा
बीते हुए कल और आने वाले कल का यह हिस्सा है।

हमें अपने हक़ दो, यह भी उनकी आवाज़
घर की चौखट से बाहर आएं
क्यों इतिहास को याद कर सती हो जाएं
थे शब्द हज़ारों के, पर साथ नहीं कोई साज़

यह किस्सा ऐसा, जो सुनते सुनाते चलता जाना है
क्यों हम जुल्म सहें, ऐसा औरत ने कहा
कहने को यह किस्सा अब भी चल रहा
कभी शांत तो कभी अंगार बन जाता है

नारों के बीच से आती है सदा
मन से हटा दो भय और शर्म
लगन से किए सारे और सही कर्म
इतनी शक्ति संजोए फिर भी डरती है

एक भीड़ में किसी एक की यह पुकार नहीं
इस आवाज़ को सुनने के लिए जुलूस ज़रूरी नहीं
सुनो अपनी ही आवाज़ तो करोगे महसूस
ऐसा कौन सा सपना है हो सकता जो साकार नहीं

गीता साहनी

अनदेखी मेहनत का हवन कुंड

यह नाटक भारत ज्ञान विज्ञान समिति द्वारा मार्च-अप्रैल '93 के दौरान देश के विभिन्न भागों में "समता कला जत्था" ने प्रस्तुत किया था। हम यहां उसके कुछ अंश दे रहे हैं। महिलाएं सुबह से रात तक कितनी मेहनत करती हैं जिन्हें न तो पुरुष, न वे स्वयं ही स्वीकार करती हैं। क्या इस योगदान को यों ही नकारा जाता रहेगा।

औरत सुबह उठकर जल्दी जल्दी घर के काम—झाड़ू देना, पानी भरना, नाश्ता तैयार करना आदि निबटाने में लगी है।

कोरस 1—जल्दी करो, जल्दी, जल्दी, जल्दी पिता के नहाने के लिए गर्म व बेटे के नहाने के लिए गुनगुना पानी।

कोरस 2—बच्चों की कंघी, कपड़े, टिफिन, बस्ता, पति का टिफिन जल्दी तैयार करो।

कोरस 3—इस मां के पास किसी के लिए समय नहीं है।

औरत इधर से उधर सबकी मांगें पूरी करती चक्कर खाकर गिर पड़ती है। पति से पूछा जाए उसकी पत्नी क्या काम करती है।

पति—मेरी बीवी कुछ काम नहीं करती।

जनगणना वाले आते हैं—

बहनजी, आपके पति क्या करते हैं?

जी, वह क्लर्क हैं।

आप क्या काम करती हैं?

औरत—*(रोटी पकाते-पकाते)* जी, मैं कुछ नहीं करती।

दूसरी औरत—*(ओखली में धान कूटते-कूटते)* जी, मैं कुछ नहीं करती।

तीसरी औरत—*(कपड़े प्रेस करते हुए)* जी, मैं कुछ नहीं करती।

कोरस 1—जल्दी करो, जल्दी करो, बच्चों के स्कूल से आने का समय हो गया। भूखे आएंगे।

कोरस 2—पति के साथ किसी सामाजिक कार्यक्रम में जाना है। जल्दी काम खत्म करो। पति के दफ्तर से आने का समय हो गया।

गाना

अदृश्य मेहनत के हवन-कुंड में
उनके जल रहे हैं दिन, जल रही हैं रात
घिसटते घिसटते घड़ी की सुई ज्यों
जिंदगी सारी जैसे मशीन बन गई है।
मन का दरवाज़ा बंद कर
भूल लोरी की धुन वो
आधी रातों को आंखें
थकी मुंदती हैं
आंखें हैं तो आधी रात बंद होने के लिए
बंद होंठ लगते हैं मौन ज़ख्म लिए हुए
चले थे जहां वहीं खड़े हैं
हज़ारों कदम चलने के बाद
अनदेखी मेहनत के हवन-कुंड में
उनके जल रहे हैं दिन-रात

कोरस 1—एक गृहणी दिन में कम से कम 10 घंटे काम करती है।

कोरस 2—एक कामकाजी औरत एक दिन में कम से कम 17 घंटे काम करती है।

कोरस 3—एक मज़दूर औरत दिन में कम से कम 18 घंटे काम करती है। □

औरतों का अपना बैंक

जुही जैन

पिछले दिनों की बात है। गर्मी की छुट्टी बिताने मैं गोवा गई। बहुत सुना था इस सुन्दर शहर के बारे में। सोचा था यहां सब कुछ बड़ा शांत है। उस समय मैंने कल्पना भी नहीं की थी कि यहां मेरा अनुभव इतना रोचक होगा। यही अनुभव आपके साथ बांट रही हूं।

गोवा की राजधानी है पणजी। पणजी की सड़कों पर हर चार-पांच दुकानों में से एक दुकान सूखे मेवे की या फिर शराब की है। एक दिन इन्हीं सड़कों पर घूमते-घूमते एक बोर्ड देखा 'विमेंस कोओपरेटिव बैंक'। गोवा में सड़कों पर औरतों को चीकू, संतरे और मसाले बेचते तो हमने कई बार देखा है। मेलों और नव वर्ष पर नाचते-गाते भी देखा है। कार्निवल के दिनों में मस्ती लुटाते भी देखा है। पर इस कदर चुपचाप, बिना हलचल के बैंक जैसी संस्था चलाते देखने का यह पहला अनुभव था।

औरतों के लिए: औरतों का बैंक

आप सोचेंगी बैंक है, इसमें क्या रोचक और नई बात है। पर आपको जानकर हैरानी होगी। इस बैंक की खासियत यह है कि यह पूरी तरह से औरतों का बैंक है। इस बैंक में काम करने वाली सभी औरतें हैं। इसकी शेयर-होल्डर भी औरतें हैं। इसमें खाता भी केवल औरतें ही खोल सकती हैं। यानि यह बैंक पूरी तरह औरतों के विकास को ध्यान में रखकर चलाया गया है। और तो और इसमें लगने वाली पूंजी भी औरतों ने इकट्ठी की थी। लेकिन यह सब हुआ कैसे?

एक सपना: बैंक हो हमारा अपना

इस बैंक की अध्यक्षा है श्रीमती प्रिया भोबे। वह कहती हैं—'घर चलाना, बचत करना तो कोई हम औरतों से सीखे। फिर जो काम हम छोटे पैमाने पर अपने घरों में, रोज़मर्रा की ज़िंदगी में करती हैं, वही बड़े पैमाने पर बाहर क्यों नहीं कर सकती हैं?'

इसी सोच के साथ बीस साल पहले, 1973 में श्रीमती लिबी लोबो सरदेसाई नाम की महिला ने इस बैंक की नींव रखी। बिना किसी सरकारी अनुदान या बाहरी मदद के। करीब पच्चीस हज़ार रुपये सौ औरतों ने मिलकर जुटाए। उधार लेकर भी नहीं। घर के खर्चों में से बचत करके। सभी सौ औरतें गृहणियां थीं। अपना विकास करना चाहती थीं। बैंक खोलकर अपने जैसी तमाम औरतों को रोज़गार के बेहतर मौके देना चाहती थीं। अपनी मदद करना उनका सपना था। और सपना था कि एक बैंक उनका अपना हो।

वे जानती थीं पैसे में बड़ी ताक़त होती है। आमदनी बढ़ने से परिवार में उनकी स्थिति मज़बूत होगी। बस, हो गई इस बैंक की स्थापना। सभी सौ औरतें इस बैंक में शेयर होल्डर बन गईं। मिलकर काम करने लगीं।

इस बैंक में काम करने वाली औरतों की संख्या सत्रह है। आठ निर्देशिकाएं और एक अध्यक्षा। महीने में एक या दो बार बोर्ड की बैठक होती है। इस बैठक में बड़े कर्ज़ों के बारे में मिलकर फैसले लिए जाते हैं। पांच हज़ार का कर्ज़ा मेम्बर अपनी गारंटी पर दे सकती है। पर इससे बड़े कर्ज़ों के लिए पूरे समूह की रज़ामंदी ज़रूरी होती है। शुरू-शुरू में कर्ज़े केवल शादी-ब्याह और रोज़गार के लिए ही दिए जाते थे। पर अब मकान बनाने के लिए भी कर्ज़ा मिल जाता है।

कितना कुछ बदल गया

बैंक शुरू होने से औरतों को बहुत फायदा हुआ। गोवा में औरतें अचार, पापड़, मसालों की छोटी-छोटी दुकाने चलाती हैं। सड़क के किनारे पटरी पर अपना सामान रखकर बेचती हैं। बैंक से कर्ज़ा मिलने पर उन्हें अपने काम को बढ़ाने के नए-नए मौके मिले। पहले वे सामान टोकरियों में रखकर या जमीन पर फैलाकर बेचती थीं। अब उनके पास अपनी दुकाने हैं। आमदनी बढ़ी तो घर में इज्ज़त बढ़ी। मान-सम्मान मिला। रुतबा ऊंचा हुआ। जिंदगी बेहतर बनी। इस सबसे घर का नियंत्रण काफी हद तक उनके अपने हाथ में आ गया। उन पर ज़ोर-जबर्दस्ती और शोषण की संभावना भी कम हुई।

वैसे भी गोवा में उत्तरी भारत के अनुपात में औरतों पर अत्याचार की वारदातें कम होती हैं। दहेज की प्रथा यहां भी है। समाज में ज्यादा लोग हिन्दू और ईसाई धर्म को मानते हैं। दोनों समाजों में लेन-देन का रिवाज भी है। पर दहेज के लिए औरतों पर ज़ोर और हिंसा करने की खबरें कम ही सुनने को मिलती हैं।

क्या वास्तव में धर्म का असर है?

गोवा में औरतों की स्थिति काफी सुखद है। उन पर दबाव भी कम है। वह हर क्षेत्र में पुरुष के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चलती हैं। पर इसके लिए कौन ज़िम्मेदार है? आम धारणा यह है कि यह ईसाई धर्म का प्रभाव है। यहां केवल ईसाई औरतें ही खुलकर बाहर आती हैं। जबकि हिन्दू औरतें घर में ही रहती हैं। पर यह सच नहीं हैं। धर्म का प्रभाव काफी होता है। पर औरतों की खुद की मेहनत और जागरूकता को नज़रअंदाज नहीं किया जा सकता। न ही उनके पुरुष साथियों के योगदान और सहयोग को। दोनों समाजों में औरतों की स्थिति एक सी है। दोनों ही घर के बाहर काम करती हैं। दोनों ही परेशानियों का डटकर मुकाबला करती हैं।

अब आगे क्या इरादा है?

इस बैंक की सफलता दिन-ब-दिन बढ़ती जा रही है। आज इसके पास दो करोड़ रुपये की जमा-पूंजी है। पांच हज़ार औरतें इसकी शेयर होल्डर हैं। अभी तक बैंक एक किराए के भवन में चलता था। अब इसका अपना भवन तैयार है। भारत सरकार बैंक की इस सफलता से बेहद खुश है। इस तरह के बैंक भारत में और जगह खोलने का इरादा किया गया है।

□

औरतों की बदलती तस्वीर

सुहास कुमार

यह सच है कि महिला आंदोलन व महिलाओं में जागरूकता फैलाने की कोशिशों के बावजूद आम महिलाओं की स्थिति में खास बदलाव नहीं दिखता है। महिलाओं पर घर व बाहर हिंसा बढ़ती ही जा रही है। लेकिन सच्चाई यह भी है कि महिलाएं चार-दिवारी से बाहर कदम रख चुकी हैं। उनके मन में नई उमंगे जाग उठी हैं। पति-परमेश्वर के मायने बदल गए हैं। वे अपने मान-सम्मान की बात सोचने लगी हैं। हिंसा, यौनिक हिंसा के ज्यादा मामले प्रकाश में आना इस बात का सूचक है कि वे अब अपने अधिकारों के लिए आवाज़ उठाने लगी हैं। खामोशी से जुल्म सहना उन्हें मंजूर नहीं है।

बाहरी दुनिया में भी अब महिलाएं हाशिए से निकलकर मुख्य धारा में आ गई हैं। सरकारी या गैर-सरकारी दफ्तरों और बैंकों में महिलाओं का प्रतिशत दिनों-दिन बढ़ता ही जा रहा है। कामकाजी महिलाओं की संख्या बढ़ने के साथ-साथ उनके कामकाज के क्षेत्र में भी बहुत विस्तार हुआ है।

हमें ग्रामीण व शहरी इलाकों से सक्रिय संगठनों व कार्यकत्ताओं की कई रपटें व अनुभव प्राप्त हुए हैं। बहुत सी हिम्मती महिलाएं हैं जिन्होंने दुखों व कष्टों को अपनी किस्मत मानकर स्वीकार नहीं किया है, अपने हालातों से जूझकर नए रास्ते निकाले हैं।

आइए, देखें बदलाव कहां-कहां आया है।

दहेज़ लोभियों से छुटकारा

एक साधारण परिवार की लड़की रमा की शादी 18 वर्ष की उम्र में हो गई। शादी के छः महीने बाद ही उस पर दहेज कम लाने के लिए जुल्म होने लगे। उसने मायके चिट्ठी लिखी। उस पर बांझ होने का आरोप भी लगाया गया। मायकेवालों ने पंचायत बुलाई। पंचायत ने डाक्टरी जांच का आदेश दिया। रमा पूर्ण स्वस्थ पाई गई। रमा ससुराल वापस गई। पंचायत के लिखित आदेश के बावजूद कि उसे अब तंग नहीं किया जाएगा, उसको पीड़ित किया जाना बंद नहीं हुआ। उसे ज़हर तक पिलाने की कोशिश की गई।

रमा मायके आ गई। घर में उस पर ससुराल वापस जाने के लिए बहुत दबाव डाला गया। रमा ने महिला-मंडल की मदद ली। रमा के भेजे पत्र, पंचायती फैसले की कापी, डाक्टरी जांच प्रमाण पत्र, सभी कागज़ों की फाइल बनाकर ज़िला पुलिस अधीक्षक, सोलन (हि.प्र.) के सामने केस रखा गया। एक हफ्ते के भीतर रमा के पति और ससुर को गिरफ्तार कर लिया गया। दहेज़ का सारा सामान रमा को वापस मिल गया। अब रमा सुख-शांति से अपने मां-बाप के साथ रह रही है।

राधा ने नए सिरे से ज़िंदगी शुरू की

राधा एक साधारण परिवार की किंतु बी.ए. पास युवती है। वह नौकरी करना चाहती थी पर घरवालों के दबाव के कारण उसे ब्याह करना पड़ा। ससुराल में पति व ससुर थे। उनके व्यवहार में उसके प्रति कोई शालीनता नहीं थी। उल्टे उसके पढ़े-लिखे होने पर ताना दिया जाता।

राधा के ससुर अचानक एक दिन एक महिला को ले आए और कहा कि यह तेरी सास है। एक दिन उनकी शह पाकर राधा के पति ने राधा को मारा-पीटा भी। तीन साल तक राधा जुल्म सहती रही। समझौते की कोशिश की, लेकिन कब तक सहती। ससुराल छोड़कर मायके आ गई। जल्दी ही पिता की मृत्यु हो गई। उसने नौकरी तलाश की। उसे मां का पूरा सहारा व सहयोग मिला। उसे नौकरी भी मिल गई और वकील की मदद से पति से तलाक भी। वह नए सिरे से ज़िंदगी की शुरुआत करके खुश है।

(केस रपट-सूत्र संस्था, हि. प्र.)

प्रौढ़ शिक्षा का बीड़ा उठाया है उर्मिला ने

दुर्ग जिले (मध्य प्रदेश) के दुधली गांव में रहती हैं श्रीमती उर्मिला मिश्रा। कक्षा 8 तक पढ़ी हैं। 41 साल उम्र है। अभी एक साल पहले तक सिर्फ घर-गृहस्थी संभालती थीं। एक साल पहले जब गांव में प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम शुरू हुआ उसमें भाग लेने को आगे आईं। अपने विकासखंड के सब पुरुष प्रेरकों के बीच वह एक अकेली महिला प्रेरक हैं। यही नहीं, महिलाओं को शिक्षित व जागरूक बनाने में पूरी तरह लगी हुई हैं। गांव-गांव घूमकर शिक्षा का संदेश पहुंचाने के लिए उन्होंने साइकिल चलाना सीखा। कई प्रशिक्षण कार्यक्रमों में भी भाग लिया है। एक महिला मंडल का गठन किया है।

सरकारी कार्यक्रम खत्म हो चुका है, लेकिन उनका घर इन तमाम क्रियाओं का केंद्र बना हुआ है। गांव की लड़कियां व महिलाएं वहां पढ़ने आती हैं। रामायण का पाठ भी किया जाता है। महिला मंडल की बैठकें होती हैं। चर्चा चलती है। एक पुस्तकालय भी खोला गया है। गांव की महिलाएं पंचायत भवन न जाकर उनके घर जाना पसंद करती हैं। उन्हें सब गांववालों का विश्वास प्राप्त है। उर्मिला को पति का सहयोग मिला हुआ है। उनके पति ने भी प्रौढ़ शिक्षा की कक्षाएं रात में लेनी शुरू की हैं।

(श्री मनीष वर्मा से प्राप्त रपट)

हालातों से जूझती पूनम

मेरठ में रहने वाली 28 वर्षीय पूनम के पति की मृत्यु हो गई। साथ में एक नन्हीं बच्ची व 7 साल का बेटा। घर में मां व बहनें। आमदनी का कोई साधन नहीं। पूनम ने हिम्मत नहीं हारी। आमदनी के लिए उसने अखबार बांटने का धंधा शुरू किया। 'हॉकर' यूनियन ने कड़ा विरोध किया। नाते रिश्तेदारों ने ताने कसे। उसने सभी विरोधों का डटकर सामना किया।

उसका कहना है कि अखबार बांटने से इतनी कमाई हो जाती है कि घर का व बेटे की पढ़ाई का खर्च आसानी से चल जाता है। किसी की गुलामी सहने व भीख मांगने की बजाए उसने यह रास्ता चुनकर और महिलाओं के लिए एक नया रास्ता खोला है।

(स्रोत-उत्तरा)

हिम्मती शीला

महाराष्ट्र के एक गांव की बात है। दलित वर्ग की शीला का प्रेम एक मुसलमान युवक से हो गया। वह शादीशुदा है। शीला गर्भवती हो गई। मां है नहीं। पिता व भाई ने लड़की के पेट पर लात मारकर गर्भ गिराने की कोशिश की किंतु असफलता मिली। उसने एक लड़के को जन्म दिया। शीला ने तय किया उसे न तो शादी की ज़रूरत है और न ही और बच्चों की। उसने नसबंदी करा ली। अब मज़दूरी करके मां-बेटे खुशी से रह रहे हैं।

(स्रोत-महिला मंच, म.प्र.)

विकास कार्यों में लगी सविता

दक्षिणी राजस्थान के डूंगरपुर ज़िले के दूर दराज़ गांव की सविता कक्षा 5 में पढ़ रही थी जब उसकी शादी हो गई। पति ने गौना कराने आने से इंकार कर दिया। उसको तलाक़ मिल गया। कुछ दिन उसने नर्स का काम किया। फिर वह नौकरी छूट गई। इस बीच वह ज्यादातर मायके ही रहती रही। पति की मृत्यु हो गई। फिर कुछ दिन ससुराल में भी रही । सविता ने सोचा—'अगर पीहर व ससुराल में सहारा नहीं मिल रहा तो क्यों न अलग रहकर ज़िंदगी बनाएं।'

उसे एक स्वैच्छिक परियोजना में 200 रु. माह पर नौकरी मिल गई। आज सविता स्वतंत्रता से रहती है। उसने डूंगरपुर एकीकृत परती भूमि विकास योजना में ग्राम स्तरीय प्रशिक्षण प्राप्त किया है और वह गांव में उत्प्रेरिका के रूप में काम कर रही है।

(इन्दु उपाध्याय, 'पिडो' संस्था)

साहसी विमल

महाराष्ट्र के चंद्रपुर ज़िले के विरम गांव की विमल एक धनी परिवार की लड़की थी किन्तु ज्यादा पढ़ी-लिखी नहीं थी। ब्याह भी अच्छे खाते-पीते घराने में हुआ। दो साल बाद ही पति को लकवा मार गया। विमल पर सारे घर के काम-काज का बोझ आ गया। विमल के एक बेटी थी। बेटी को कान्वेंट स्कूल में भेजने का खर्चा देने को ससुराल वाले तैयार नहीं थे।

वह ससुराल से अलग रहने लगी। पहले स्वयं कपड़े सिल कर बेचती थी। फिर दो-तीन लड़कियां रखकर रोज़गार बढ़ा लिया। आज बेटी को डाक्टरी पढ़ा रही है।

(मृदुला दोषी)

नई राहें

बंगलौर के पास जलहल्ली में वायुसेना के तकनीकी कॉलेज में 22 पुरुषों के साथ 25 युवतियों को पायलट अफसर के रूप में प्रशिक्षित किया जा रहा है। महिला इंजीनियरों का यह समूह जगुआर व मिग जैसे हवाई जहाज़ों की जांच व मरम्मत का काम करेगा। महिलाओं के लिए एक नई राह खुली है।

थल सेना व नौसेना में भी अब महिलाएं जाने लगी हैं। उनको पुरुषों द्वारा लिए गए सभी प्रशिक्षण व शारीरिक व्यायाम करने होते हैं। सभी समान परीक्षाओं से गुज़रना होता है। डाक्टर, इंजीनियर, वकील, प्रशासनिक अधिकारी, बैंक व सरकारी नौकरियां, महिला उद्योगकर्मी—कोई भी क्षेत्र लें, महिलाओं का प्रतिशत तेज़ी से बढ़ रहा है।

नये पंचायतीराज क़ानून में महिलाओं के लिए आरक्षण से गांव स्तर पर उनके लिए राजनीति का दरवाज़ा भी खुल गया है। इससे नीति बनाने की प्रक्रिया में महिलाओं की भी भागीदारी होगी।

कहने का मतलब है अब महिलाओं के लिए मौके व विकल्प बढ़ रहे हैं। धीरे-धीरे उन्हें सहारा व बल देने वाला ढांचा विकसित हो रहा है। लड़की का मायके में अधिकार, माता-पिता आदि का सहारा व महिला संगठन का सहारा, यह दो महत्वपूर्ण तंत्र हैं जिन्हें और विकसित करने की ज़रूरत है। पुरुष तो पुरुष, स्वयं महिलाएं ही कहती हैं कि औरत औरत की दुश्मन है। क्यों न हम एक दूसरे का सहारा बनने की कोशिश करें? क्यों न हम स्वयं अपने में सम्मान का पात्र बनें? □

नई राहें

बंगलौर के पास जलहल्ली में वायुसेना के तकनीकी कॉलेज में 22 पुरुषों के साथ 25 युवतियों को पायलट अफसर के रूप में प्रशिक्षित किया जा रहा है। महिला इंजीनियरों का यह समूह जगुआर व मिग जैसे हवाई जहाज़ों की जांच व मरम्मत का काम करेगा। महिलाओं के लिए एक नई राह खुली है।

थल सेना व नौसेना में भी अब महिलाएं जाने लगी हैं। उनको पुरुषों द्वारा लिए गए सभी प्रशिक्षण व शारीरिक व्यायाम करने होते हैं। सभी समान परीक्षाओं से गुज़रना होता है। डाक्टर, इंजीनियर, वकील, प्रशासनिक अधिकारी, बैंक व सरकारी नौकरियां, महिला उद्योगकर्मी—कोई भी क्षेत्र लें, महिलाओं का प्रतिशत तेज़ी से बढ़ रहा है।

नये पंचायतीराज क़ानून में महिलाओं के लिए आरक्षण से गांव स्तर पर उनके लिए राजनीति का दरवाज़ा भी खुल गया है। इससे नीति बनाने की प्रक्रिया में महिलाओं की भी भागीदारी होगी।

कहने का मतलब है अब महिलाओं के लिए मौके व विकल्प बढ़ रहे हैं। धीरे-धीरे उन्हें सहारा व बल देने वाला ढांचा विकसित हो रहा है। लड़की का मायके में अधिकार, माता-पिता आदि का सहारा व महिला संगठन का सहारा, यह दो महत्वपूर्ण तंत्र हैं जिन्हें और विकसित करने की ज़रूरत है। पुरुष तो पुरुष, स्वयं महिलाएं ही कहती हैं कि औरत औरत की दुश्मन है। क्यों न हम एक दूसरे का सहारा बनने की कोशिश करें? क्यों न हम स्वयं अपने में सम्मान का पात्र बनें? □

ग्रामीण महिलाओं के विचार

''हमें मर्द ठगते हैं। हम पर विश्वास नहीं करते। वो हमारे हाथ में काम सौंपने से डरते हैं लेकिन हम सोचती हैं कि अगर हमारे हाथ में सब दे दिया जाए तो हम उनसे अच्छा काम करके दिखला सकती हैं।''

''मेहनत व लगन से काम करें तो कुछ भी असंभव नहीं है।''

''पुरुष सरपंच महिलाओं की समस्याओं पर बिल्कुल ध्यान नहीं देते हैं। पुरुष सरपंच अपना निजी स्वार्थ देखते हैं।''

गांव की बड़ी-बूढ़ी औरतों का कहना है—''अगर औरतें शासन चलाने लगेंगी तो देश का भट्टा बैठ जाएगा।'' मगर नई पीढ़ी की महिलाएं व लड़कियां पंचायतों में आरक्षण की बात सुनकर बहुत खुश होती हैं।

''अगर औरतें हैंडपंप बनाती हैं तो इसमें हमारे लिए कोई ताज्जुब की बात नहीं है। यह तो पुरुषों के लिए ताज्जुब की बात है। अगर हमें छूट मिल जाए तो हम वह सभी काम कर सकती हैं जो पुरुष करते हैं।''

(गांव चिकसाना, मेंहदी बाग व किशनपुरा में चर्चा—अनिता ठेनुआ)

औरत और पानी

चुनिया मुनिया दो बहिनी
करने लगी आपस में बात
चलो बहिनी पानी ले आएं
नहीं तो मरेंगे प्यासन रात
मटका लेके पहुंची पंप के पास
थकी हारी काम न सिमटा, रोटी न खाई
क्यों पानी हम ही भर के लाएं?
औरत की जात जो हमने पाई
लगता है पानी करम लिख लाई
कपड़े धोएं बच्चन को नहलाएं
खाना भी हम ही पकाएं
इसीलिए पानी भी हम ही लाएं?
पानी मर्द, बच्चे सब ही पीते
क्या कभी पानी वे न भर सकते?
दुनिया की इस चाल को देखा
पानी के इस हाल को देखा
पानी-औरत, औरत-पानी
यही बन गई जीवन कहानी
हमने भी अब मन में ठानी
अब न चलेगी औरों की मनमानी
पानी को हम समझेंगे
उसके इतिहास को जानेंगे।

आरती श्रीवास्तव

राधा और गुड्डो

एक कहानी

गाँव में हर जगह एक ही चर्चा थी। अब राधा का क्या होगा? पर इसमें बेचारी राधा का क्या कुसूर?

यकायक सब चुप हो गए।

संतो ताई राधा और गुड्डो के साथ आ रही थी। साथ में समाज सेविका रेशमा दीदी भी थीं।

ताई ने कहना शुरू किया। बहनो और भाइयो। पहले पूरी बात सुन लो। फिर फैसला करना। मसला केवल राधा का नहीं है। गाँव की सभी औरतों का है।

राधा और गुड्डो दोनों की उम्र सोलह साल है। एक ओर जहां गुड्डो होशियार, दबंग और पढ़ी-लिखी, राधा सीधी-साधी, डरपोक और अनपढ़।

गुड्डो और राधा में एक और भी फर्क है। राधा दिन भर घर के काम में लगी रहती। गुड्डो भी यह सब करती। साथ ही खेलती, कूदती और कभी कभी रेशमा दीदी के साथ मीटिंग में भी जाती।

एक दिन दोनों जलाने के लिए लकड़ी इकट्ठी करने जंगल गईं।

बातों-बातों में शाम ढल गई।

तभी दो मनचले युवक पेड़ों की ओट से बाहर निकले। उन्होंने राधा और गुड्डो को पकड़ लिया।

गुड्डो ने होशियारी दिखाई। टंगड़ी फसाकर उन्हें गिरा दिया।

राधा फंस गई। दोनों लड़कों ने राधा की इज़्ज़त लूट ली।

रोती पीटती राधा गाँव आई। माँ-बाप दुखी थे। पर क्या करें।

गुड्डो ने हिम्मत दिलाई।

फौरन रेशमा दीदी को लाई।

रेशमा दीदी ने राधा और उसके घरवालों को ढाढ़स बंधाया। राधा को गाँव की डाक्टरनी के पास जाँच के लिए ले गई। राधा के कपड़े भी जाँच के लिए अलग रखे।

जाँच से पहले राधा को नहाने नहीं दिया।

पुलिस में एफ आई आर लिखाने के लिए राधा को तैयार किया। समझाया। इस में तुम्हारी बदनामी नहीं होगी। बल्कि मुजरिमों को सज़ा मिलेगी।

पुलिस ने रपट लिखी। मुजरिमों का डील-डौल। पूरी घटना का ब्यौरा।

ताई ने मीटिंग बुलाई। बताओ दोष किसका। अपराधी कौन ?

जो इस बच्ची के साथ हुआ वह कल हम में से किसी के साथ भी हो सकता है।

सब एक साथ बोले राधा का कोई दोष नहीं। हम चुप नहीं रहेंगे। मुजरिमों को सजा दिलवाएंगे। राधा अकेली नहीं। हम सब इसके साथ हैं।

राधा को भी इस घटना को भूलना होगा। इसमें हम इसकी मदद करेंगे। कोई राधा पर उंगली नहीं उठाएगा।

लड़कियों को गुड्डो जैसी दिलेर और हिम्मत वाली बनना चाहिए। ■

बेटी ने संस्कार किया

नई लीक बनाई

यह कोई सपना नहीं है। यह एक अनोखी पर सच्ची घटना है। परसों ही की बात है। मेरी सहेली कोदरीबाई का देहांत हो गया। कोदरीबाई एक ठेठ हिंदू स्त्री थी। दो बच्चे थे, एक बेटा और एक बेटी। बेटी की शादी कर दी। वह अपने घर की हो गई। सोचा था बेटा बुढ़ापे में काम आएगा। पर बेटा निकला नालायक । सहारा बनना तो दूर रहा, उसने मां को ही घर से निकाल दिया। बेटी को पता चला। मां को साथ ले गई।
पास-पड़ौसियों ने बेटी की सराहना की। कल तक जो बेटी को बोझ कहते थे आज उसी का गुणगान कर रहे थे।और बेटी चुपचाप अपना फर्ज निभाती रही।

मां उसके साथ चली तो गई। पर बेटा आखिर बेटा था। हमेशा याद करती। जैसा भी है, है तो घर का चिराग। कोदरीबाई इसी गम में घुलती रही। बीमार पड़ गई। बहन ने भाई को खबर दी। पर बेटा नहीं आया। बेटी मां की देखभाल करती रही चुपचाप। एक दिन कोदरीबाई इस संसार से चल बसी। बेटे को तार दिया। मां का दाह-संस्कार तो उसी को करना था। तभी तो मां स्वर्ग जाएगी। बेटी जिंदा मां की सेवा कर सकती है, मरने पर क्रिया-कर्म नहीं। पर बेटा तब भी नहीं आया। सब परेशान। कौन करे रस्म अदायगी? नज़दीकी रिश्तेदार को बुलाएं। जितने लोग उतनी सलाहें।

रूढ़ी तोड़ी

बेटी से रहा न गया। आखिर बेटे ने पूरी

ज़िंदगी क्या सुख दिया था मां को? फिर भी वह सब कुछ। उसने फैसला किया। दाग वह देगी। बिरादरी वाले हैरान। पंडितों ने एतराज़ उठाया। पर उसने एक न सुनी। इतने साल चुप रही। आज फट पड़ी। आखिर में समाज ने हार मानी। बेटी ने मां का संस्कार किया।

यह घटना जब मैंने अपनी मां को सुनाई तो वह बोली, 'ठीक ही तो है। बेटी जब सब सुख देती है, तो फिर इस अधिकार से महरूम, क्यों?' मुझसे बोली, 'बेटी, मेरे मरने पर मेरा संस्कार तुम ही करना।'

आज मुझे दोहरी खुशी है। एक, मेरी किसी बहन ने एक रीत तोड़कर एक मुहिम छेड़ी। दूसरी, पुराने संस्कारों वाली मां ने मुझे यह हक देकर अपने परिवार की एक रीत को चुनौती दी।

□

सिर्फ़ निम्नवर्ग की समस्या नहीं

वीणा शिवपुरी

दिल्ली के एक धनी मोहल्ले के आलीशान मकान से एक औरत के चीखने चिल्लाने की आवाज़ें आती हैं। सबका ध्यान उस ओर जाता है। घर की बाल्कनी पर बिखरे बाल और कपड़ों में एक औरत निकलती है लेकिन तभी एक मर्द उसे कमरे के भीतर खींच लेता है। दरवाजा धड़ाक से बंद हो जाता है। थोड़ी देर की चीख-पुकार के बाद सब शांत हो जाता है।

बड़े महानगर की एक महिला संस्था में बार-बार एक औरत का फ़ोन आता है। मेरा पति रोज़ मुझे मारता पीटता है। पिछले बीस सालों से मैं यही सह रही हूं। फ़ोन पर वह औरत धारों-धार रोती है लेकिन अपना नाम-पता नहीं बतलाती। संस्था के दफ्तर में आकर मिलने से इंकार करती है।

एक फ़ौजी अफ़सर की पत्नी शादी के अठ्ठाइस साल बाद सबके सामने मुंह खोलती है कि मेरा पति लगातार मुझे लातों-घूसों से मारता रहा है। घर में बच्चों, नौकरों, आने-जाने वालों के सामने भी मुझे मारता है। अब मुझ से और नहीं सहा जाता।

बम्बई के एक मशहूर फिल्म निर्देशक की पत्नी एक अखबार को इंटरव्यू देकर बताती है कि दुनिया के सामने बहुत सभ्य और भला समझा जाने वाला मेरा पति मुझे मारता है।

एक ग़लतफ़हमी

अभी तक एक आम धारणा यही रही है कि पत्नी के साथ मार-पीट जैसा घटिया काम सिर्फ़ अनपढ़, गरीब लोग करते हैं। यह केवल झुग्गी-झोंपड़ियों में होता है। यह एक बहुत बड़ी ग़लतफ़हमी है। जैसे-जैसे इस समस्या पर पड़ा चुप्पी का पर्दा हटा है सच्चाई सामने आई है।

— घर में औरतों के साथ होने वाली मार-पीट हर वर्ग में होती है।
— इसका लोगों की शिक्षा, संस्कृति, सभ्यता से कोई ताल्लुक नहीं है।
— ऐसी हरकतें सिर्फ़ इक्का-दुक्का खराब घरों में ही नहीं होतीं बल्कि इनकी संख्या बहुत ज्यादा है।
— घरेलू हिंसा का रूप रोज़मर्रा के थप्पड़ों से लेकर बहुत घातक हिंसा तक होता है। औरतों की हड्डियां टूट जाती है, आंख, दांत जाते रहते हैं या जान भी चली जाती है।

समझने की बात: एक

इस तरह की ग़लतफ़हमी का मुख्य कारण यह है कि गरीबों का जीवन खुली किताब होता है। उनके जीवन का दुख-सुख सबके सामने होता है। एक कमरे की झोपड़ी या फुटपाथ पर रहने वाले लोग कुछ भी छिपा नहीं सकते। जबकि बड़े

बंगलों में यही अपराध बंद दरवाजों के पीछे होता है। वहां पैसे के ज़रिए लोगों की चुप्पी खरीदी जा सकती है।

मध्य वर्ग और उच्च वर्ग की औरत झूठी इज्जत और 'लोग क्या कहेंगे' की बेड़ियों से बंधी होती है। हज़ारों मामलों में ये पिटी हुई औरतें अपने शरीर पर पड़े नील के निशानों को छिपा कर दुनिया के सामने सुखी जीवन का नाटक करती हैं।

इसके पीछे के कारणों को समझने की भी जरूरत है। मध्य वर्ग और उच्च वर्ग की औरत जहां एक तरफ़ औरत होने के कारण शोषित और प्रताड़ित है, वहीं उसे अपने वर्ग से कुछ फ़ायदे भी मिलते हैं जिन्हें छोड़ना उसके लिए आसान नहीं होता। जबकि निम्न वर्ग की औरत शादीशुदा होकर भी खुद कमाती और पेट भरती है। शादीशुदा रहने का सामाजिक दबाव तो सभी वर्ग की औरतों पर होता है। फिर भी निम्न वर्ग की औरत आर्थिक रूप से स्वतंत्र होने की वजह से कुछ ताकत रखती है।

समझने की बातः दो

दूसरी समझने की बात यह है कि पुरुष औरत को इसलिए नहीं मारता कि उसमें समझ या शिक्षा का अभाव है। आज यह बात तो साफ़ है कि बहुत पढ़े-लिखे विद्वानों, कलाकारों और धनियों में भी औरतों को पीटने वाले मर्द मिलते हैं।

इस हिंसा का सीधा संबंध है पुरुष की सत्ता की भावना से। वह औरत को एक व्यक्ति नहीं बल्कि एक वस्तु समझता है। अपनी संपत्ति समझता है। जिसके साथ वह जैसा चाहे बरताव कर सकता है। इस भावना की जड़ में है पितृसत्तात्मक व्यवस्था जो पुरुष को स्त्री से ऊंचा मानती है। यह व्यवस्था पुरुष को यह अधिकार देती है कि वह औरत को दबा कर रखे।

समझने की बातः तीन

जब कहीं मार-पीट के ऐसे मामले होते हैं तो मौहल्ले और गांव के स्तर पर उसके खिलाफ़ कार्रवाई तो करनी ही चाहिए। लेकिन साथ ही इस समस्या की जड़ पर चोट करना ज़रूरी है। जब तक पुरुषों के मन से उनके बड़प्पन की भावना दूर नहीं होगी इस हिंसा पर काबू पाना कठिन है।

भावनाओं और रवैयों का निर्माण बचपन में होता है। जब तक घर में लड़के-लड़की के बीच भेदभाव दूर नहीं होगा, जब तक घर में भाई बहन को बराबरी का दर्जा नहीं देगा, तब तक उनके रवैयों में बदलाव नहीं आएगा। यही बच्चे जो आज बहनों पर रौब जमाते हैं, हाथ उठाते हैं, कल पत्नी को मारेंगे। जरूरत है आज के लड़कों को सही समझ देने की कि वे अपने आपको बिना कारण बेहतर न समझें और न ही लड़की अपने को कमतर माने। □

अपनी दुकान : एक सफल प्रयोग

जुही जैन

(सबला के माध्यम से हमारी कोशिश यह रहती है कि हर अंक में महिलाओं की हिम्मत और मेहनत की घटनाएं आपके साथ बांटें। साथ ही महिलाओं को संगठित करने वाले संगठनों से आपका परिचय कराएं। इसका मूल उद्देश्य है कि आप अपने इलाकों में औरतों को संगठित कर सामूहिक प्रक्रियाओं को बढ़ावा दे पाएं। इस अंक में भी हम आपको इसी तरह की एक सच्ची घटना के बारे में बता रहे हैं। तो आइए, चलें हरियाणा की ओर।)

हरियाणा हमारे देश का एक बहुत ही हरा-भरा हिस्सा है। यह किस्सा इसी हरे-भरे प्रदेश के छोटे से जिले रेवाड़ी का है। रेवाड़ी जिला एक बहुत ही गरीब और पिछड़ा इलाका है। यहां पर पढ़े-लिखे लोगों की संख्या बहुत कम है। औरतों को लिखाने-पढ़ाने का तो यहां रिवाज ही नहीं है। इलाका पथरीला और पहाड़ी। उस पर सबसे ज़्यादा किल्लत पानी की। जहां पीने को पानी नहीं मिले, वहां खेती के वास्ते पानी कहां से लाएं। जिंदगी कठिन और मायूस। खैर, जैसे-तैसे गुजारा चल ही जाता था।

ऐसा कब तक चलता!

कोई न कोई उपाय तो करना ही था। आखिर इंसान हैं। जीने का साधन तो चाहिए। सबने अपना-अपना दिमाग लगाया। पंचायत बैठी। प्रस्ताव पास हुआ। तय हुआ पानी की व्यवस्था हो जाए तो खेती करेंगे। सरकार ने पंचायत की बात सुनी। पाईप लाईन के सहारे पानी की व्यवस्था करने का ऐलान हुआ। एक आस बंधी। पर पानी नहीं आया।

मर्द कुछ तो पढ़े-लिखे थे। कुछ बगैर पढ़े। तय किया, शहर जाएंगे। मजदूरी करेंगे। कुछ तो गुजर-बसर होगी। बस, ये भी चल दिए काम की तलाश में। छः महीने, साल भर पैसा भेजा। फिर धीरे-धीरे ये भी बंद हो गया।

हिम्मत औरतों की

पीछे रह गई औरतें। बगैर लिखी-पढ़ी। घूंघट की ओट में रहने वालीं। करें तो क्या करें। शहर की होतीं तो काम करने निकलतीं। घर-परिवार, बच्चों की जिम्मेदारी अब पूरी तरह उन पर आ पड़ी। जो घर में था उससे कब तक गुजारा चलता। रखे-रखे तो भरे घड़े भी खाली हो जाते हैं।

सबने मिलकर तय किया। हम भूखे नहीं मरेंगे। हाथ पर हाथ धरकर भी नहीं बैठेंगे। उनमें से एक थी चिंतामनी देवी। खोरी गांव में उसका पीहर था। उसका भाई खोरी गांव में काम करने वाली संस्था का कार्यकर्त्ता था। चिंतामनी अपने साथ दो औरतों को लेकर खोरी गई। हरियाणा सोशल वर्क और रिसर्च सेंटर के बारे में पता किया। संस्था के अध्यक्ष श्री सुन्दर लाल से

मिलीं। अपनी आपबीती सुनाई। संस्था ने इन औरतों की तकलीफ महसूस की। साथ ही एक योजना तैयार की गई।

संस्था ने राह दिखाई

संस्था ने रेवाड़ी के दस सबसे गरीब गांव चुने। हरेक गांव से कम से कम एक औरत को संस्था में काम दिया गया। काम के दौरान इस औरत को दरी और गलीचे बुनने का काम भी सिखाया गया। इस एक महिला ने अपने गांव जाकर दूसरी औरतों को भी यह काम सिखाया। हर गांव में संस्था ने इन औरतों की मदद से एक दुकान खोली। दुकान का नाम था 'अपनी दुकान'।

इस दुकान से औरतें गलीचे बनाने के लिए कच्चा माल लेतीं। साथ ही गलीचे बनाकर इसी दुकान में बेचतीं। जब दस-पंद्रह दरियां इकट्ठी हो जातीं तब ये सारी दरियां संस्था की मदद से बाज़ार में बेची जातीं। जो भी मुनाफा होता वह 'अपनी दुकान' के साझे खाते में जमा किया जाता। इस फंड से जरूरत के समय औरतों को मदद मिलती। काम चल निकला। एक औरत एक महीने में पांच दरी और चार गलीचे बना पाती। इससे उसे 400 से 600 रुपये तक की आमदनी होती।

दुख के दिन बीते री

इस योजना से रेवाड़ी के पचपन गांवों की छः सौ औरतों ने फायदा उठाया। संस्था ने लड़कियों के लिए टाइप, दफ्तर का काम, फोटोग्राफी आदि सिखाने की भी व्यवस्था की। इस काम को सीख कर लड़कियां आत्मनिर्भर बन रही हैं। इससे कच्ची उम्र में शादी का मसला भी काफी हद तक हल हुआ है। साथ ही हर गांव में एक महिला विकास दल भी शुरू किया गया है। गांव की सभी औरतें

इस दल की सदस्याएं होती हैं। कोई भी औरत मीटिंग बुला सकती है। फैसले भी मिलकर ही लिए जाते हैं। दल ने पानी के हैंडपंप, सिलाई सेंटर और गोबर गैस के चूल्हे गांव में सरकारी मदद से लगवाए हैं। रेवाड़ी के तिरपन गांवों में आठ सौ चूल्हे अब तक लग चुके हैं।

हम हुईं कामयाब

आज रेवाड़ी की औरतें अपने पैरों पर खड़ी हैं। अपना घर चलाती हैं। बच्चों की देखभाल भी करती हैं। और पैसे भी कमाती हैं। आज घर में उनका मान है। फैसले लेने में बराबर की भागीदारी है। घूंघट में वो अब भी रहती हैं। पर घूंघट की ओट से बात भी करती हैं। उनकी साझी सफलता का सेहरा किसी और के सिर नहीं, उनके अपने सिर बंधा है। इन औरतों का यह अनुभव मिसाल है हमारे सामने। यह साबित करता है कि गांव छोड़कर शहर भाग जाना समस्या का समाधान नहीं है। न ही रो पीटकर भगवान के भरोसे रहने से परेशानी दूर होती है। परेशानी का सामना अगर हिम्मत से किया जाए तो जीवन बेहतर बनता है। साथ ही शक्ति और साहस दुगुना होता है। तो फिर इस मिसाल से हमने क्या सीखा? यही—

हममें हिम्मत हममें ताक़त
हममें पूरा दम है
किसने कहा कि औरत जाति
मर्दों से कुछ कम है। □

सौदामिनी ने नया जीवन पाया

गीता साहनी

सौदामिनी अपने माता-पिता की इकलौती संतान थी। उसके जन्म पर सबने उसकी मां को बुरा-भला कहा क्योंकि उसने एक लड़की को जन्म दिया था। पिता ने उसे गोद में नहीं उठाया। दादा-दादी भी नाखुश थे। पर सौदामिनी की मां को लड़की के जन्म पर दुख नहीं हुआ और उसने उसका नाम रखा सौदामिनी।

देखते-देखते चार बरस बीत गए। सौदामिनी की दादी उसे भरपेट भोजन भी नहीं देना चाहती थी। गांव में एक स्कूल था जिसमें सिर्फ लड़के पढ़ते थे। सौदामिनी की मां की बड़ी इच्छा थी कि बेटी को पढ़ने भेजे। उसने स्कूल भेजने की बात उसके पिता से की तो बदले में मिला एक थप्पड़। मामला यहीं खत्म हो गया।

सौदामिनी के हाथ में बड़ा हुनर था। वह मिट्टी के खिलौने बनाती और खेलकर उन्हें तोड़ देती। सही, भरपेट भोजन न मिलने की वजह से वह अक्सर बीमार पड़ जाती।

नाटक मंडली का असर

जब सौदामिनी बारह साल की थी उसके गांव में शहर से कुछ लोग आए। पता चला वे नाटक करते हैं। उनके समूह का नाम था 'परिचय'। उनका मुखिया था राघव। वह चाहता था कि गांव के लोग भी नाटक में हिस्सा लें। सौदामिनी को भी नाटक के लिए चुना गया। नाटक दिखाने का उद्देश्य था समाज की बुरी प्रथाएं जैसे बाल-विवाह, दहेज आदि का अंत करना। लड़कियों पर किए जाने वाले अत्याचारों का अंत करना।

उनका एक नाटक था—'भगवान की तरफ़ से'। कहानी यों थी—

एक किसान और उसकी पत्नी भगवान से एक संतान के लिए प्रार्थना करते हैं। उनके एक लड़की पैदा होती है। उसके जन्म से दोनों को ही कोई

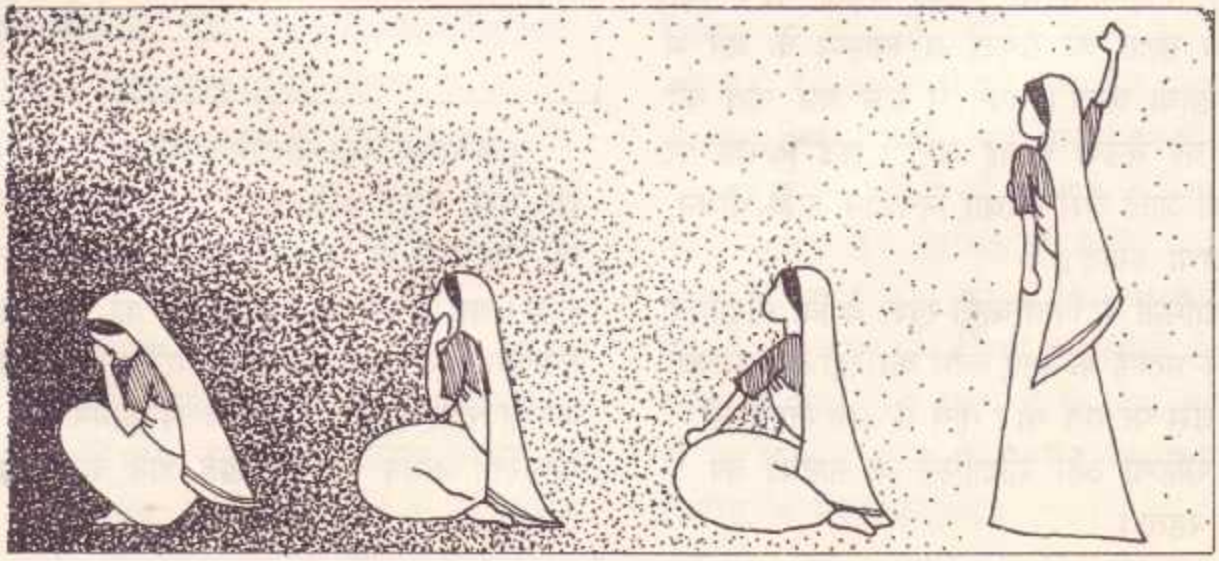

खुशी नहीं होती। वे लड़की पर काफ़ी अत्याचार करते हैं। पुत्र न होने की कमी उन्हें दुख देती रहती है।

एक दिन किसान की पत्नी बीमार पड़ जाती है। उनकी बेटी उसकी बहुत सेवा करती है। किसान को रात में सपना आया कि भगवान उससे कह रहे हैं कि उन्हें अपनी बेटी पर अत्याचार नहीं करना चाहिए। अब उनका व्यवहार बदल जाता है और वे बेटी को बहुत प्यार करने लगते हैं।

गांव में कुछ लोग ऐसे थे जिन्हें नाटक बहुत पसंद आया। कुछ ऐसे भी थे जो उसकी निंदा करते। लेकिन गांव वालों में कुछ बदलाव ज़रूर आया।

उजाले की ओर

सौदामिनी 'परिचय' समूह से खूब घुल-मिल गई। वह स्कूल में और घर पर खूब पढ़ने लगी। नाटक कंपनी के कुछ लोग वापस चले गए। राघव और रोहिणी रह गए। वे स्कूल चलाते। सौदामिनी बड़ी होने लगी। राघव और रोहिणी के साथ गांव की तरक्की के लिए बहुत काम करती। स्कूल में लड़कियों की संख्या बढ़ती गई। पढ़ाई के साथ छात्रों को सफाई व स्वास्थ्य के बारे में भी सिखाया जाता। हफ्ते में एक बार गांव की औरतों की बैठक बुलाई जाती। कई विषयों पर चर्चा की जाती जैसे परिवार नियोजन, सही भोजन, दहेज प्रथा आदि।

सौदामिनी के पिता बहुत खुश थे कि सौदामिनी गांव की भलाई के लिए काम कर रही है। उसकी मां को उस पर गर्व था। गांव में अब लोगों को राघव, रोहिणी और सौदामिनी के नाटकों का इंतज़ार रहता।

कुछ समय बाद सौदामिनी की शादी हो गई। वह दूसरे गांव चली गई। पर उसने घर-परिवार की देखभाल के साथ-साथ अपना काम जारी रखा। वह बताती कि "लड़कियों को भी पढ़ाना, लिखाना एवं काम सिखाना चाहिए। इस क़ाबिल बनाना चाहिए कि वे समाज में अपने को कैसे संभालें। अपने पैरों पर खड़े होने के काबिल बनें।" □

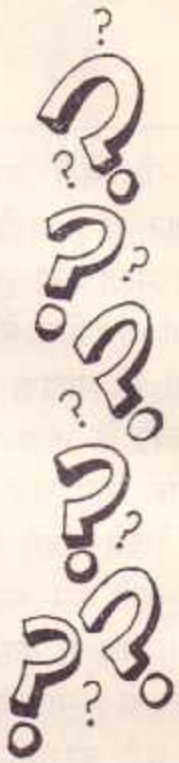

लोगों ने, समाज ने
क्यों तुमको अबला माना है
तुम्हीं दुर्गा, चंडी, काली
क्यों नहीं किसी ने जाना है
कोकिला बन लड़ी
पुरुषों संग आजादी की लड़ाई
खून बहाया फिर भी
क्यों दी सिर्फ़ दूध की दुहाई
अधिकार तुम्हें बराबर मिले
पर केवल कागज़ पर
आंखें मुड़ी ताने उछले
मिला न मान बाहर जाने पर
रुंधा कंठ क्यों?
क्यों भिक्षा मांगे है
मृगतृष्णा नहीं है तेरा जीवन
नहीं तुम निर्बल
नहीं तुम्हें अबला कहलाना है
तुम सच में सबला हो
अब सबला बन सभी को दिखलाना है।

तारा अहलूवालिया
इदारा, भीलवाड़ा

ज़ीनत, हमारी बहन

देश के दूर दराज़ इलाके आसाम की एक मुसलमान बहन ज़ीनत की कहानी देश की अन्य बहनों के लिए एक मिसाल है। आज मुसलमान बहनों के लिए तलाक़ का मसला बहुत अहम बना हुआ है। यह सीधे उनकी ज़िन्दगी से ताल्लुक रखता है। अलग-अलग इमाम और मौलवी उस पर अपनी राय देते रहते हैं। अभी हाल में एक वक्त में तीन बार तलाक़ कहने और एक-एक महीने के वक्फ़े पर तीन बार तलाक़ कहने की बात पर काफ़ी बहस चली। ऐसे माहौल में ज़ीनत की आपबीती और उसकी क़ानून के ज़रिए अपने हक़ की लड़ाई को जानना और भी ज़रूरी हो जाता है।

दहेज़ की मांग

ज़ीनत की शादी 2 दिसम्बर 1987 को मोहम्मद इकबाल अनवर के साथ हुई थी। सन् 1989 में उसने एक लड़के को जन्म दिया। तब तक सब कुछ ठीक था। एकाएक ज़ीनत के पति को याद आया कि ज़ीनत शादी में कम दहेज़ लाई थी। इसके पीछे उसका इरादा कुछ भी हो, उसने ज़ीनत के साथ बात-बात पर मारपीट शुरू कर दी। थोड़े दिनों में ससुर ने भी पीटना शुरू कर दिया। यहां तक कि ज़ीनत का जीना मुहाल हो गया।

सन् 1990 में ज़ीनत ने पुलिस में एफ. आई. आर. भी दर्ज कराई। लेकिन पुलिस ने कोई कार्रवाई नहीं की। तंग आकर ज़ीनत अपने पिता के घर लौट आई। उसने अपने पति के खिलाफ़ भरण-पोषण का दावा दायर कर दिया। ज़ीनत के पति ने तीन बार तलाक़ कहने की रस्म का फायदा उठा कर उसे तलाक़ दे दिया।

असली लड़ाई

अब शुरू हुई ज़ीनत की अन्याय के खिलाफ़ लड़ाई। उसका कहना है कि "सवाल मेरे पति के पास जाने का नहीं था, बल्कि यह साबित करने का कि उसकी कार्रवाई ग़लत थी। इस तरह औरत को तलाक़ देने की प्रथा ग़लत है।"

इस साल पांच मई को एक लंबी क़ानूनी लड़ाई के बाद आसाम उच्च न्यायालय ने उसके तलाक़ को रद्द और शून्य कर दिया। उच्च न्यायालय का कहना था कि सिर्फ़ प्रथा होने की वजह से ही कोई मुसलमान पति बग़ैर किसी ठोस वजह के अपनी पत्नी को इस तरह से तलाक़ नहीं दे सकता।

एक मिसाल

यह फैसला आसाम की सभी मुसलमान औरतों के लिए अपने हक़ों की लड़ाई में एक मिसाल बन गया है। ज़ीनत कहती है, "हजारों औरतों ने मुझे हिम्मत बंधाने और फिर मुबारकबाद के ख़त लिखे। उनसे बड़ी ताक़त मिली।"

अब ज़ीनत औरतों की आजादी के लिए काम करना चाहती है। वह चाहती है कि अपनी उन बहनों की मदद करे जिनके पास जानकारी नहीं है। जो क़ानून की पेचीदगियों से घबराती हैं। वह कहती है कि "मेरी इच्छा है कि मेरा बेटा बड़ा हो कर वकील बने और समाज के पुरुषवादी नज़रिए के ख़िलाफ़ लड़े।"

कुरान का बेजा इस्तेमाल

ज़ीनत अब गहराई से कुरान का अध्ययन कर रही है। मुस्लिम क़ानून की बारीकियों को समझने की कोशिश कर रही है। उसका कहना है कि "कुछ मुल्ला काज़ी अपनी मिलीभगत से कुरान को ग़लत तरीके से पेश कर रहे हैं।"

भविष्य के लिए ज़ीनत की योजना है कि सारे देश में चल रहे प्रगतिशील आंदोलन से जुड़े और मुसलमान औरतों के हक़ों के लिए काम करे। मुसलमान औरतों की तकलीफ़ें सबके सामने रखे। आज भी अशिक्षा, गरीबी, पिछड़ापन और पर्दे की बेड़ियों में बंधी अधिकांश मुसलमान बहनें अपने आपको काफ़ी बेबस पाती हैं। उस पर धर्म के ठेकेदार उन्हें कुचलने पर और भी आमादा हैं।

ज़ीनत कहती है—"मेरे पास दिल्ली जाने या अखबार वालों की मीटिंग बुलाने के लिए पैसा नहीं है। लेकिन मैं चाहती हूं कि देश के सभी हिस्सों के महिला संगठन मेरी कहानी जानें। मैं उन्हें बताना चाहती हूं कि किस तरह से आसाम में कुरान का सहारा लेकर मुसलमान औरतों को सताया जा रहा है।" □

ज़ीनत बहन, 'सबला' तुम्हारी आवाज़ कोने-कोने तक पहुंचाएगी। हम तुम्हारे साथ हैं।

—संपादिका

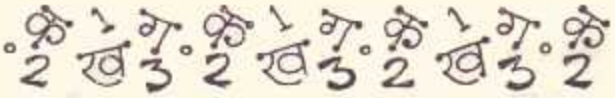

एक महत्वपूर्ण फैसला

सर्वोच्च न्यायालय ने पश्चिमी बंगाल के एक केस 'गौतम कुंडू बनाम राज्य सरकार' में एक महत्वपूर्ण फैसला सुनाया।

गौतम कुंडू ने अपनी पत्नी को तलाक दे दिया था। पत्नी ने उच्च न्यायालय में फौज़दारी क़ानून संहिता की धारा 125 के तहत अपने तथा अपने बच्चे के लिए भरण-पोषण की मांग की। फैसला उसके हक़ में हुआ।

गौतम ने सर्वोच्च न्यायालय में फिर से विचार के लिए अपील की। यह प्रार्थना-पत्र भी दिया कि बच्चे के खून की जांच की जाए। उसका कहना था कि बच्चा उसका नहीं है। जांच द्वारा यह सिद्ध हो जाएगा। ऐसी हालत में वह भरण-पोषण क्यों दे।

सर्वोच्च न्यायालय ने मुकदमे पर पुनर्विचार करके फैसला सुनाया—"चूंकि जब बच्चा पैदा हुआ था पति-पत्नी विवाहित जीवन बिता रहे थे, अतः क़ानूनन बच्चा धारा 112 के अनुसार गौतम का ही है। अगर वह गवाह आदि उचित सबूत से सिद्ध कर दे कि बच्चा उसका नहीं हो सकता तभी अदालत उस पर विचार करेगी।"

गौतम कोई सबूत पेश नहीं कर सका। अतः फैसला पत्नी के हक में हुआ। अदालत में यह भी कहा गया कि गौतम ऐसा सिर्फ इसलिए कह रहा है ताकि उसे भरण-पोषण भत्ता न देना पड़े। अदालत ने स्पष्ट शब्दों में यह नियम लिखित दर्ज किया कि अदालत बिना किसी वजह के बच्चे की खून की जांच का आर्डर ज़ारी नहीं करेगी। अगर पुरुष कहता है कि बच्चा उसका नहीं है तो उसे ठोस सबूतों से यह सिद्ध करना होगा कि गर्भवती होने के समय पत्नी पति के साथ नहीं रह रही थी। □

—सीमा कालरा

कुलदीपक ने आग लगाई

राजस्थान के एक छोटे से गांव में एक किसान रहता था। थोड़ी सी जमीन थी। छोटा सा घर था। एक अच्छी पत्नी थी। जीवन राजी-खुशी बीत रहा था। पत्नी का पैर भारी हुआ। दोनों फूले न समाए। जचगी हुई। घर में बेटी जन्मी। पहले जापे में बेटी हुई, दोनों उदास हो गए। सबने समझाया अरे लक्ष्मी आई है। गोद हरी रही तो आगे दर्जनों बेटे होंगे। लड़की का नाम रखा मोटकी।

समय बीता। एकं बार फिर आस बंधी। किसान मेले से गोटे का कुर्ता टोपी लाया बच्चे के लिए । जचगी हुई। एक बार फिर बेटी जन्मी। अब तो दोनों पति-पत्नी पर पहाड़ टूट पड़ा। गोटे का कुर्ता टोपी उठा कर संदूक में बंद कर दिया। छोरी को गुदड़ी में लपेट कर पटक दिया। मां ने तीन महीने बीतते न बीतते अपना दूध छुड़ा दिया। लड़की का नाम रखा छोटकी।

अब तो किसान और उसकी पत्नी ने हज़ारों मन्नतें मानीं। सारे मंदिरों और मज़ारों पर ढोक दी। गंडे ताबीज बांधे। व्रत उपवास किए। मन में यही धुकड़-पुकड़ कहीं तीसरी लड़की न हो जाए। इधर मोटकी और छोटकी बिना लाड़-प्यार, देखभाल के पलने लगीं। सुबह आंख खुलने से पहले मां उन्हें कोसने लगती।

— "अरी करमजलियो, उठो और घर का काम धंधा करो।"

— "मेरे तो भाग फूटे हैं। घर में थोर के झाड़ उग गए। आम की कोंपल तो एक ना फूटी।"

— "हाय, मेरी तो कोख ना फली-फूली।"

मोटकी और छोटकी डांट फटकार खातीं और सुबह से शाम तक काम में लगी रहतीं। गाय भैंस का चारा-पानी करना। कुएं से मटके भर के लाना। घर में रोटी पकाना। तिस पर रात-दिन बेटी होने के कारण अपमान सहना।

किसान की पत्नी एक बार फिर पेट से हुई। उस मुर्दा घर में एक बार फिर से जान आ गई। किसान अपनी औरत के लिए कभी बर्फ़ी लाता, तो कभी जलेबी। कभी-कभी बचा चूरा मोटकी, छोटकी को भी मिल जाता। शहर से आए एक पड़ोसी ने सलाह दी—"भैया, सहर में ऐसी मसीन है जो बता देवे है कि पेट में छोरा है कि छोरी। वहां जाकर जांच करवा लो।"

किसान ने जमीन का एक टुकड़ा बेचा और पत्नी को शहर ले गया। लौट कर वापिस आए तो पेट गिरवा कर। मशीन ने बताया था कि पेट में छोरी है। ऐसे कर के तीन बार किसान ने थोड़ी थोड़ी जमीन बेची और पत्नी को शहर ले गया। हर बार पेट गिरवा दिया। किसान की पत्नी की सेहत चौपट हो गई। अब वो लगती थी साठ साल की बूढ़ी। न चला जाए, न काम किया जाए। लेकिन अभी तो बेटा जनना बाकी था। किसान की सारी ज़मीन भी बिक गई थी। चौथी बार किसान बैल बेच कर पत्नी को शहर ले गया। इस बार लौटे तो बड़े खुश होकर। डाक्टर ने बताया कि पेट में लड़का है।

जचगी हुई। लड़का हुआ। थाली बजी। गुड़

बंटा क्योंकि लड्डू बांटने लायक पैसे न थे। लड़के का नाम रखा कुलदीपक।

अब मोटकी और छोटकी घर के काम के साथ साथ खेत पर मज़दूरी भी करने लगी थीं। मां तो करीब-करीब खाट से लग गई थी। कुलदीपक के बड़े लाड़ होते। किसान जो अब मज़दूर बन गया था अपनी मज़दूरी में से उसके लिए कभी देसी घी का चूरमा लाता तो कभी खेलने को फिरकी। कुछ बड़ा हुआ तो उसे स्कूल में डाल दिया। 'कुलदीपक पढ़ेगा-लिखेगा, बड़ा आदमी बनेगा तो हमारे सब दुख दूर हो जाएंगे।'

दोनो पति-पत्नी यही सपने देखते।

इधर कुलदीपक का पढ़ने, काम करने में ज़रा भी मन नहीं लगता। बेजा लाड़ प्यार ने उसे जिद्दी, कामचोर और घमंडी बना दिया। गाली के बिना वह बात न करता। कभी मां के पास पैसे न होते तो हाथ भी उठा देता। लेकिन आखिर था तो मां-बाप की आंख का तारा।

मोटकी और छोटकी के ब्याह के लिए पैसे न थे। मां-बाप ने उन्हें बूढ़ों के पल्ले बांध दिया। कहा, "कम से कम घर जमीन तो है। रोटी, कपड़ा मिलता रहेगा। औरत को और क्या चाहिए।" चार छः साल में मोटकी और छोटकी दोनों विधवा हो गईं। लेकिन दोनों ने खूब जी जान से मेहनत की। अपनी खेतीबाड़ी संभाली और बच्चे पालने लगीं। उन्हें सदा मां-बाप की चिंता लगी रहती थी।

जैसे-जैसे कुलदीपक बड़ा हुआ उसे जुए और शराब की लत लग गई।

मां-बाप ने कभी रोका टोका तो था नहीं। घर के बर्तन-भांडे तक बिक गए। एक दिन कुलदीपक ने मां-बाप को घर से निकाल कर घर भी बेच दिया। घर बेच कर मिले रुपये लेकर वह शहर भाग गया। बूढ़े, बीमार और बेसहारा मां-बाप एक पेड़ के नीचे रहने लगे। गांव वालों में से कोई कुछ खाने को दे देता।

किसी आते-जाते से यह ख़बर मोटकी और छोटकी को मिली। दोनों अपने गांव से दौड़ी-दौड़ी आईं। मां-बाप की यह दशा देख कर उनकी आंखों में पानी भर आया। मां को गले लगाया और बाप को सहारा दिया। बोलीं—"चलो हमारे घर। तुम्हारे लिए दो रोटी की कमी नहीं है। सुख से रहो।" दोनों पति-पत्नी बहुत शर्मिंदा हुए। कहने लगे बेटी के घर कैसे रहें।

मोटकी, छोटकी ने समझाया—कैसी बेटी, कैसा बेटा। क्या दोनों को नौ महीने कोख में नहीं रखा? दर्द उठा कर नहीं जना? हां, हमें वो प्यार दुलार नहीं दिया। तुम्हारी करनी तुम्हारे साथ। लेकिन हम तो मेहनत करती हैं, कमाती हैं। मां बाप को भूखे न मरने देंगी। □

जो बाँटे बेटी-बेटे को,
वो दीवार गिरानी होगी

हर बेटी का है अधिकार
सेहत, शिक्षा, मान और प्यार

महिला पंच और पंचायतीराज

सुहास कुमार

बहनों, तुम्हें एक रोमांचकारी खबर सुनाएं। अब महिलाएं भी देश की शासन प्रक्रिया में भाग ले सकेंगी।

वह कैसे? क्या जैसे इंदिरा गांधी प्रधान मंत्री बनी थीं।

नहीं बहनों, यहां हम केंद्रीय सरकार की बात नहीं कर रहे हैं। एकाध महिला की बात भी नहीं कर रहे हैं। यहां हम नए पंचायती क़ानून की बात कर रहे हैं जिसमें कुल पंचों में से 30 फी सदी महिला पंच चुनी जाएंगी। यही नहीं, गांवों की पंचायतों को बहुत सी नई ताक़तें व अधिकार दिए गए हैं।

इतने बड़े देश का शासन सिर्फ केंद्रीय व राज्य सरकारें अच्छी तरह नहीं चला पाती हैं। स्थानीय शासन गांववाले अपने आप चला सकें इसके लिए 1961 में बने पंचायती क़ानून एक्ट में बहुत से सुधार किए गए हैं। यह संविधान के 72वें व 73वें संशोधन के नाम से जाने जाते हैं। यह नया क़ानून 2 दिसंबर 1992 को बना।

पर बहना, प्रधान कक्का चौधरी हमें खड़ा होने दें, तब न?

नहीं, इस बार वह महिलाओं को खड़ा होने से रोक नहीं पाएंगे। जो सीटें महिलाओं के लिए आरक्षित हैं उन पर महिलाओं को ही टिकट मिलेगा। अगर महिला नहीं खड़ी होती है तो वह सीटें चाहे खाली रह जाएंगी, पुरुष उन पर चुनाव नहीं लड़ सकते।

माना कि हम खड़े हुए और चुन भी लिए गए, पर हमारी सुनेगा कौन?

नहीं, इस पर भी सोचा गया है। महिलाओं के लिए गांव पंचायत, ब्लॉक समितियों व ज़िला परिषद, तीनों स्तरों पर 30 फी सदी सदस्यता के आरक्षण के साथ सरपंच व उपसरपंच की सीटों के लिए भी 30 फी सदी आरक्षण होगा। अगर महिला सरपंच या उपसरपंच चुनी गई तो ठीक है वरना इन दोनों में से एक तो उन्हें बनाना ही होगा।

बहना, यह सरपंच वाली बात ज़रा ठीक से बताओ।

मान लो एक ब्लॉक में 20 गांव हैं तो कम से कम 6 गांवों में महिला सरपंच या उपसरपंच चुनी जाएंगी। अगले चुनाव में दूसरे 6 गांवों में महिला

सरपंच या उपसरपंच चुनी जाएंगी। उससे अगले चुनाव में दूसरे गांवों में ऐसा किया जाएगा।

बहना, यह तो भारी ज़िम्मेवारी है। हमें तो बहुत कुछ सीखना व जानना होगा। तभी हम यह ज़िम्मेवारी उठा पाएंगी। वैसे है तो यह बड़ी रोमांचकारी खबर। फिर तो बहुत ढेर सी महिलाएं

राजनीति में आ जाएंगी।

हां, जब यह पूरी तरह लागू होगा तो लगभग 8 लाख औरतें इस प्रक्रिया में हिस्सा लेंगी।

रुपए-पैसे व कार्य का नियंत्रण

बहना, अब यह बताओ कि हम क्या-क्या काम कर पाएंगे। उनके लिए पैसा कहां से आएगा। और पैसे पर हमारा ज़ोर कितना होगा?

राज्य की विधान सभा पंचायत को क़ानूनन यह अधिकार दे सकती है कि कर वसूली वे करें। राज्य के फंड में से भी पंचायतों को पैसा दिया जा सकता है।

ग्राम पंचायतों और ब्लॉक समितियों को यह हक़ दिया जाएगा कि वे आर्थिक विकास और सामाजिक न्याय संबंधी योजनाएं बनाएं व उन्हें लागू करें।

तो बहना, हम पानी के नल लगवाएं, राशन की दुकान खुलवाएं, स्कूल, अस्पताल, आटे की चक्की आदि भी खुलवा सकते हैं।

हां, यही सब तो महत्वपूर्ण बातें हैं। गांव के हित में, महिलाओं व बच्चों के हित में जो होना है सब आपको तय करना है। अपनी आवाज़ भी उठानी है और कुछ कर के भी दिखाना है। □

पंचायती-राज में वित्तीय प्रबंध

हर राज्य को एक साल के अंदर वित्तीय कमीशन बनाना होगा। हर 5 साल में इसका फिर से गठन होगा। इसका काम होगा पंचायतों की वित्तीय स्थिति की पूरी जानकारी रखना, उनको दी जाने वाली अनुदान राशि तय करना, कौन-कौन से कर कितनी मात्रा में वसूले जाएं, उनकी आमदनी कैसे बढ़ाई जाए और इस आमदनी को किन-किन कामों में लगाया जाए।

आर्थिक विकास कार्यक्रम ग्यारहवीं अनुसूची

भूमि, खेती, सिंचाई के साधनों का विकास एवं विस्तार। पशु पालन एवं विभिन्न प्रकार के लघु व कुटीर उद्योग-धंधों का विकास। गांवों में पेयजल, ईंधन, चारा, बिजली, सड़कें व आवागमन के साधनों का विस्तार, प्राथमिक, माध्यमिक स्कूल, तकनीकी व व्यवसायिक प्रशिक्षण एवं शिक्षा के लिए स्कूल व कॉलेज खुलवाना। स्वास्थ्य संबंधी योजनाओं का विकास एवं लोगों को उन्हें मुहैया करवाना। कमज़ोर, पिछड़े वर्ग, अनुसूचित जनजातियों, बच्चों व स्त्रियों के कल्याण संबंधी विशेष योजनाओं को लोगों तक पहुंचाना।

कर वसूली के क्षेत्र

ग्राम पंचायतों को आवास-कर, पशुओं और अन्य वस्तुओं पर चुंगी, वाहन-कर, तीर्थ-कर, पेयजल आपूर्ति-कर, देशी शराब की बिक्री पर 2 प्रतिशत कर आदि लगाने का अधिकार दिया गया है। इसके अलावा छुट्टा छोड़ दिए जाने वाले मवेशियों के मालिकों से जुर्माना, निर्माण कार्यों में अनुमति, सार्वजनिक भूमि पर स्थाई स्वामित्व व अस्थाई निर्माण के लिए शुल्क, बिजली व पानी की सुविधा के लिए कर, संपत्ति, निवास व जाति के लिए प्रमाण पत्र आदि पर पंचायतें शुल्क-वसूली कर सकती हैं।

कामकाजी महिलाओं के लिए क़ानून

न केवल निरक्षर बल्कि अकसर पढ़े लिखे लोग भी सही क़ानूनी जानकारी न होने की वजह से शोषण का शिकार होते हैं। आज महिलाएं हर क्षेत्र में आगे आ रही हैं। आइए देखें, क़ानून क्या कहता है।

भेदभाव गैर-क़ानूनी

यदि औरत और मर्द दोनों से एक जैसा काम लिया जाए तो समान काम, समान वेतन क़ानून के हिसाब से दोनों को बराबर का मेहनताना देना पड़ेगा।

भर्ती के वक्त औरत और मर्द में भेदभाव करना मना है। यदि भर्ती के वक्त कोई मालिक भेदभाव करता है तो उसके खिलाफ शिकायत दर्ज की जा सकती है। सरकार ने इस तरह के मामलों की सुनवाई के लिए कुछ अफसर नियुक्त किए हैं। उन अफसरों के पास अर्ज़ी देकर इस तरह के मामलों की सुनवाई कराई जा सकती है। अर्ज़ी पर न तो कोई फीस लगती है, न ही किसी वकील की ज़रूरत पड़ती है।

पढ़ने में तो एक से काम के लिए एक सी मज़दूरी ठीक लगती है पर काम तो हज़ार तरह के होते हैं। बहुत से क्षेत्रों में औरतों को काम ही नहीं मिलता। महिलाओं के क्षेत्र सीमित हैं। इसलिए बराबर की मेहनत करने पर भी यह नहीं कहा जा सकता कि वह बिल्कुल एक जैसा काम है। और चूंकि ऐसा कहा नहीं जा सकता यह मालिक की मर्ज़ी पर है कि वह कितना मेहनताना दे। ज्यादातर देखने में आता है कि जो काम औरतों के लिए निधार्रित होते हैं उनमें कम मज़दूरी दी जाती है।

उदाहरण के लिए कपड़ा मिलों में 27 तरह के काम होते हैं। औरतों को मुख्यतया सूत लपटने वाले विभाग में काम दिया जाता है। अब यह काम भी उतना ही ज़रूरी है जितने और काम। काम के घंटे, मेहनत भी कम नहीं मगर इसकी मज़दूरी काफी कम निर्धारित की हुई है।

इसी तरह दवाई की फैक्टरी में औरतों को पैकेट बनाने का काम दिया जाता है। इसके लिए काफी कम पैसे मिलते हैं। लिंग भेद के आधार पर काम देने का सबसे आम उदाहरण निर्माण कार्यों में है। राज-मिस्त्री का काम पुरुष करते हैं। गारा ढोने, गिट्टी तोड़ने का काम औरतें। मज़दूरी में ज़मीन आसमान का फर्क है।

अदालत में चुनौती

क़ानून में कमी होने पर कई मामलों में महिलाएं अदालत में गईं और उन्हें कुछ हद तक सफलता भी मिली है।

कई जगह औरतों को काम देने के समय यह शर्त लगाई जाती है कि शादी के बाद उन्हें काम छोड़ देना होगा। सबसे पहले सन् 1967 में दवाई की फैक्टरी में काम करने वाली औरतों ने इस मुद्दे के खिलाफ़ विरोध किया। सर्वोच्च न्यायालय में फैसला दिया गया कि यह शर्त ग़ैर-क़ानूनी है।

केरल सर्विस कमीशन के तहत महिलाएं चपरासी के पद के लिए अर्ज़ी दे सकती हैं, लेकिन वहां साथ में यह शर्त लगा दी गई कि इस पद के लिए साइकिल चलाना आना ज़रूरी है। यह शर्त सिर्फ इसलिए लगाई गई कि महिलाओं की नियुक्ति न हो सके। रंजम्मा नामक महिला ने इसको चुनौती दी और केरल हाईकोर्ट ने फैसला दिया कि यह शर्त ग़लत और ग़ैर-संवैधानिक है। इसे हटाया जाए।

रंजम्मा ने केरल सर्विस कमीशन द्वारा कामों के अन्यायपूर्ण वर्गीकरण—जिसके तहत कुछ काम औरतों को दिए ही नहीं जाएंगे, को भी चुनौती दी। इसमें भी केरल हाईकोर्ट का फैसला उनके हक़ में हुआ।

कोर्ट का फैसला था केवल यह सोचकर कि फलां काम औरते कर सकती हैं, फलां नहीं कर सकतीं काम का वर्गीकरण गलत है। यह

महिलाओं को खुद तय करने दिया जाए कि कौन सा काम वे कर सकती हैं, कौन सा नहीं और कौन सा काम उनके मान सम्मान के खिलाफ है। पुरुष प्रधान विधान सभा व पुरुष प्रधान प्रशासनिक तंत्र को कोई हक़ नहीं है कि वे तय करें कि यह काम महिलाएं कर सकती हैं या नहीं।

एक जैसे काम के लिए भी कई बार औरत को कम वेतन मिलता है। एक जहाज़ कंपनी में काम करने वाली महिला स्टेनो ऑड्रे डी कोस्टा ने अपने मालिक को अदालत में कम तन्ख्वाह देने के लिए चुनौती दी। यह पहली महिला थीं जिन्होंने बराबरी के मेहनताने के क़ानून के तहत अदालत में केस दायर किया। कंपनी के मालिक ने शुरू में तो नहीं माना, लेकिन बाद में उसे तथा अन्य महिला स्टेनों को न्याय मिला

बहुत से व्यवसायों में महिलाएं घर पर ले जाकर काम करती हैं। कई परंपरागत कामों से लेकर कई तकनीकी कामों में ऐसा होता है। मध्यप्रदेश की बीड़ी महिला कामगरों ने शोषण के खिलाफ़ आवाज़ उठाई। "सेवा" संस्था की मदद से औरतों की सहकारी समिति बनाई गई। इससे औरतों को पूरा वेतन तो मिला और भी कई लाभ हुए। अब वे बीड़ी बिना बिचौलियों के खुद बेचती हैं। उन्हें स्वास्थ्य सुविधाएं, जचगी सुविधाएं, बच्चों के वजीफ़े आदि सुविधाएं मिली हैं। केंद्र और राज्य सरकार ने उन्हें घर मुहैया करने के लिए भी एक योजना शुरू की है।

अन्य सुविधाएं

कामकाजी महिलाओं को कुछ और सुविधाएं भी फैक्ट्री एक्ट के तहत दी गई हैं।

— महिलाओं के लिए अलग शौचालय।
— घूमने वाली मशीनों के पास काम करने की मनाही।
— रुई धुनने की मशीन के पास काम करने की मनाही।
— सुबह 7 बजे से पहले और शाम को 7 बजे के बाद औरतों से काम लेने की मनाही।

जच्चा के लिए विशेष कानून

इस क़ानून के तहत गर्भवती महिलाओं या जच्चाओं को नीचे लिखी सुविधाएं देना जरूरी है:

— पालनाघर की सुविधा
— प्रसव या गर्भपात के छः हफ्ते बाद तक काम करने व करवाने की मनाही।
— प्रसूति छुट्टी की पूरी तनख्वाह।
— गर्भपात होने पर छुट्टी व प्रसव संबंधी बीमारी की छुट्टी।
— गर्भावस्था के दौरान महिला को नौकरी से नहीं निकाला जा सकता।
— बच्चे को दूध पिलाने की छुट्टी।
— मेडिकल बोनस या बच्चे की देखभाल के समय के पैसे नहीं कटेंगे।

क़ानूनी लड़ाई लंबी व खर्चीली है। महिलाओं का अपने समय व रुपए पर नियंत्रण कम ही होता है। अदालत का वातावरण महिलाओं के लिए सम्मान जनक नहीं होता। बहुत मजबूरी में ही वे अदालत का दरवाजा खटखटाती हैं। □

सरकारी डाक्टर ने डंगरदाई की मदद ली

रमीलाल व्यास

राजस्थान का डूंगरपुर ज़िला बहुत ही छोटा आदिवासी क्षेत्र है। यहीं के पांच विकास खंडों में एक है बिछवाड़ा। यहीं के एक गांव डेटको का वेला की 65 वर्षीय गलाली बेन डंगरदाई हैं। लगभग तीन साल पहले इन्होंने पशुओं के प्राथमिक उपचार, टीकाकरण आदि का प्रशिक्षण लिया।

सरकारी कार्यक्रम अव्वल तो महिलाओं तक पहुंच ही नहीं पाते हैं। पहुंच भी जाते हैं तो आधी-अधूरी सहायता के कारण ज्यादा चल नहीं पाते हैं। ऐसे माहौल में अगर वे अपनी मेहनत से इस कार्यक्रम को आगे बढ़ाएं तो उसकी प्रशंसा किए बिना नहीं रहा जाता।

यह किस्सा है गलाली बेन का। वह चार-पांच गांवों में काम कर रही हैं, लेकिन अगर दूर के गांव से भी बुलावा आता है तो वह मना नहीं करतीं।

जून का महीना था। आनंदपुरी की भैंस की थैली (प्लेसेंटा) नहीं गिरी। भैंस न कुछ खाती थी, न पीती। बिल्कुल मरने जैसी हो गई। उस भैंस की कीमत 7, 8 हज़ार रु. होगी। सरकारी डाक्टर को बुलाया गया। उसने दो सुई लगाई। भैंस को कुछ भी आराम नहीं मिला। सुझाव आया गलाली बेन को बुलाओ।

गलाली बेन दवाई लेकर गईं। भैंस को गरम पानी के साथ रिफ्लेंटा नामक दवाई पिलाई। "भैंस ज़रूर ठीक हो जाएगी", ऐसा कहकर वह घर वापस चली गईं। दूसरे दिन जाकर देखा। भैंस का पेट साफ हो गया था, वह बिल्कुल ठीक थी। अब गांव में कोई भी जानवर बीमार हो जाता है तो गलाली बेन को ही बुलाया जाता है।

गलाली बेन गांव के कई और विकास कार्यक्रमों से भी जुड़ी हैं। जैसे सामूहिक चरागाह की ज़मीन पर पेड़ लगाने, महिला बचत समूह, सामुदायिक कुएं, महिलाओं की समस्याओं के समाधान करवाने की कोशिश व दाई का काम आदि।

डेटको का वेला मांडा पंचायत के इस गांव में "पीडो" संस्था काम कर रही है। गांववालों के लिए जानकारी शिविर, प्रशिक्षण कार्यक्रमों के अलावा स्वयं गांव वालों को प्रेरित कर यहां कई विकास कार्यक्रम शुरू करवाए हैं। महिला बचत समूह बनाया गया है जिसमें 26 महिलाओं ने 4327 रु. की बचत की है। इसमें से 1316 रु. बचत समूह की बहनों को कर्ज़ा भी दिया गया है। साहूकारों से पिंड छूटा है। गलाली बेन इसी संस्था से जुड़ी हैं और संस्था के सभी कार्यक्रमों में सक्रिय भूमिका निभा रही हैं।

□